Most respectfully Presented

TO

HER HIGHNESS THE MAHARANI

OF KUCH BEHAR

IN REOOGNITION OF THE

DEEP AND KIND INTEREST FOR THE

"PROGRESS OF"

SANSKRIT AND BENGALI LANGUAGE

कविताकोरकम्

(वङ्गानुवादसहितम्)

धुवड़ी-हाइ-स्कुल-शिक्षकान्यतमेन

श्रीअविनाशचन्द्र-चक्रवर्त्तिना

प्रणीतम्

कलिकाताराजधान्यां

गिरिश-विद्यारत्न-वर्त्मस्थ-चतुर्व्विंश-संख्यक-सद्मनि

गिरिश-विद्यारत्न-यन्त्रे

श्रीशशिभूषण-भट्टाचार्य्येण मुद्रितं प्रकाशितञ्च

१९००

मूल्यम्—।/० आनकषट्कम् ।

DEDICATED

TO

W. BOOTH ESQUIRE

M. A., Sc. D.

DIRECTOR OF PUBLIC INSTRUCTION,

ASSAM

IN RECOGNITION OF

THE INTERESTS

HE TAKES IN

THE CAUSE OF

EDUCATION.

বিজ্ঞাপন।

সংস্কৃত অমৃতনিষ্যন্দিনী অমিতশক্তিশালিনী দেব-ভাষা হইলেও কালের সর্ব্বসংহারিণী শক্তির নিকট আজ পরাজিত। সংস্কৃত আজ মৃত-ভাষা, অনাদৃত, উপেক্ষিত। আজ কাল এই ভাষায় কবিতা লিখিয়া গ্রন্থাকারে সাধারণের নিকট প্রকাশ করা নিতান্ত দুঃসাহসের কার্য্য, বিড়ম্বনা মাত্র। তবে এ বৃথা চেষ্টা কেন? মনোবেগ-নিবৃত্তিই ইহার প্রধান কারণ। তবে এইটুকু বলা বোধ হয় আবশ্যক যে, ধুবড়ি ইংরাজি বিদ্যালয়ের বার্ষিক পুস্তকবিতরণ উপলক্ষে সভাস্থলে ছাত্রগণের আবৃত্তির নিমিত্ত সময়োপযোগী গ্রীষ্ম, বর্ষা প্রভৃতি পাঁচটী ঋতু-সম্বন্ধে অতি সঙ্ক্ষেপে কয়েকটী সংস্কৃত শ্লোক রচনা করি। তৎপরে 'পিতৃ-স্তবাষ্টকম্,' 'মাতৃস্তবাষ্টকম্,' 'যুবা' শীর্ষক কবিতাগুলি রচনা করিয়া তৎসমুদায়ের পদ্যানুবাদ করি। অত্রত্য কতিপয় বন্ধু নির্ব্বন্ধসহকারে উহা প্রকাশ করিতে অনুরোধ করেন। ইহাই অন্যতর কারণ।

পরিশেষে আহ্লাদের সহিত প্রকাশ করিতেছি যে, কলিকাতা প্রেসিডেন্সি কলেজের সংস্কৃতাধ্যাপক শ্রীযুক্ত হরিশ্চন্দ্র কবিরত্ন মহোদয় অনুগ্রহপূর্ব্বক পুস্তক মুদ্রাঙ্কিত হইবার পুর্ব্বে আদ্যোপান্ত দেখিয়া দিয়াছেন এবং স্থানে স্থানে কিঞ্চিৎ কিঞ্চিৎ পরিবর্ত্তনও করিয়াছেন। তজ্জন্য তাঁহার নিকট কৃতজ্ঞতাপাশে আবদ্ধ রহিলাম। ইতি

শ্রীঅবিনাশচন্দ্র শর্ম্মা।

গ্রন্থকারের অন্যান্য পুস্তক।

প্রবন্ধকলাপম্ . . .	মূল্য ॥০
কলাপ-দীপিকা (ব্যাখ্যাপুস্তক) .	„ ৸০
নব-ব্যাকরণ . . .	„ ।৵০

'প্রবন্ধকলাপম্' সম্বন্ধে মত।

মহাশয়,

আপনার প্রণীত "প্রবন্ধকলাপম্" নামক পুস্তকখানি আমি আদ্যোপান্ত পরিদর্শন করিলাম। এখানি আপনি হাই স্কুলের তৃতীয় শ্রেণীর পাঠ্যরূপে মনোনীত করিয়াছেন। তাহা উপযুক্তই হইয়াছে। কারণ ৺ বিদ্যাসাগর মহাশয়ের সঙ্কলিত ঋজুপাঠ প্রথম ভাগ প্রায় সর্ব্বত্র চতুর্থ শ্রেণীর পাঠ্য হইয়া উঠিয়াছে। তৃতীয় শ্রেণীর পুস্তকখানি উক্ত ঋজুপাঠ অপেক্ষা কিঞ্চিদংশে কঠিন হওয়া উচিত এবং প্রবেশিকা অপেক্ষা কিঞ্চিৎ সহজ হওয়া চাই। আপনার "প্রবন্ধকলাপম্" ঠিক তদনুযায়ী হইয়াছে। ইহাতে সন্নিবিষ্ট বিষয়গুলি নীতি-শিক্ষার পক্ষে বিশেষ উপযোগী। ভাষা সর্ব্বত্র প্রায় প্রাঞ্জল হইয়াছে। সংস্কৃতপাঠ দ্বিতীয় ভাগে সঙ্কলিত-বিষয়গুলির মধ্যে আপনি অনেকগুলি ইহাতে সংগৃহীত করিয়াছেন দেখিয়া অত্যন্ত সন্তুষ্ট হইলাম; কারণ "বীরবরোপাখ্যানম্," "হরিশ্চন্দ্রো-

পাখ্যানম্," "মোহমুদ্গরঃ" এই কয়েকটী বিষয় অতিশয় উপাদেয়। বিষয়-নির্ব্বাচনে আপনি বিশুদ্ধ রুচির পরিচয় দিয়াছেন। এক্ষণে আশা করি, আপনার অভীষ্ট সিদ্ধ হউক। ইতি

প্রেসিডেন্সি কলেজ }
২৯–১১–৯৩ }

শ্রীহরিশ্চন্দ্র কবিরত্ন
সহকারী সংস্কৃতাধ্যাপক।

মহাশয়,

আপনার প্রবন্ধকলাপ পুস্তকের স্থানে স্থানে পাঠ করিলাম। পুস্তকের রচনা সরল হইয়াছে। আমার পঠিত স্থানে এরূপ দৃষ্ট হইল না যাহা বালকদিগের দুর্ব্বোধ্য। .... আমি অসুস্থ বলিয়া বিস্তারিত সমালোচনা বা সমগ্র পুস্তক পাঠ করিতে পারিলাম না। ক্ষমা করিবেন।

সংস্কৃত কলেজ }
১৫ই অগ্রহায়ণ }

শ্রীচন্দ্রকান্ত তর্কালঙ্কার।

My dear sir,

I have had time to look at your book and am glad to say............that the compilation is well-selected and will be useful to students who

prepare themselves for the University Entrance examination.

Presidency College } NILMANI MUKERJEA.

‘নবব্যাকরণ’ সম্বন্ধে মত।

নব্যভারত
চৈত্র ১৩০৪।

গ্রন্থকার বলেন,—“ছাত্রগণ ব্যাকরণের সূত্রগুলি অধিকাংশ স্থলেই না বুঝিয়া কণ্ঠস্থ করে; ইহা নিতান্ত দূষণীয়, সন্দেহ নাই। তন্নিরাকরণমানসে বালকবালিকাদিগের অনায়াসবোধ্য অতি সরল ভাষায় ব্যাকরণের যাবতীয় অবশ্যজ্ঞাতব্য বিষয়গুলি বিশদরূপে বুঝাইতে প্রয়াস পাইয়াছি এবং বহুসংখ্যক প্রশ্ন প্রদান করিয়াছি”। স্কুলের শিক্ষকতা-কার্য্যে ব্যাপৃত থাকায়, অবিনাশ বাবু, বালকদিগের অভাব বিশেষরূপ হৃদয়ঙ্গম করিয়াই এই পুস্তক লিখিয়াছেন। পাঠ করিয়া দেখিলাম, তাঁহার উপরোক্ত মন্তব্যের প্রতিকথা সত্য। এত সরল করিয়া, এত অল্প কথায় ব্যাকরণের সমস্ত কথা লেখা যায়, পূর্ব্বে ধারণা ছিল না। এই পুস্তকখানি এত সুন্দর হইয়াছে যে, আমাদের মনে হয়, অনেক ব্যাকরণকে ম্লান

করিবে। নিরপেক্ষ স্কুলের কর্ত্তৃপক্ষদিগের চক্ষে এ পুস্তক পড়িলে যে তাঁহারা ইহার আদর করিবেন, তাহাতে সন্দেহ নাই।

সঞ্জীবনী

১৯শে মাঘ, সন ১৩০৬।

ইংরাজী ব্যাকরণের অনুকরণে অবিনাশ বাবু তাঁহার নব-ব্যাকরণে অভিনব প্রণালী অবলম্বন করিয়াছেন। বালক-বালিকারা যাহাতে ব্যাকরণ সহজে শিখিতে পারে, তৎপক্ষে তিনি চেষ্টা করিয়াছেন।

AMRITA BAZAR

20th May, 1899.

We have received a copy of Navabyakaran, a new Bengali Grammar for schools and Pathsalas, and are glad to say that the work is eminently suited to the purpose. The exercises given at the end of every lesson will be found very useful.

'কবিতাকোরকম্' সম্বন্ধে মত।

৺

কলিকাতা
৫১, সুকিয়াস্ ষ্ট্রীট্,
৫ই ফাল্গুন, ১৩০৬ সাল।

অবিনাশ বাবু,

আপনার প্রণীত "কবিতাকোরকম্" নামক গ্রন্থখানি আমি আদ্যোপান্ত পাঠ করিয়াছি। ইহাতে "পিতৃস্তবাষ্টকম্," "মাতৃস্তবাষ্টকম্," হেমন্ত ব্যতীত অন্যান্য ঋতু এবং "যুবা" এই কয়েকটী প্রস্তাব সন্নিবেশিত হইয়াছে। এই গ্রন্থে লিখিত সংস্কৃত শ্লোকগুলি রচনা করিবার কারণ আপনি বিজ্ঞাপনে প্রকাশ করিয়াছেন। শ্লোকগুলির রচনা অতি সুললিত হইয়াছে; বিশেষতঃ অন্তে মিত্রাক্ষর দেওয়াতে আরও শ্রুতিমধুর হইয়া উঠিয়াছে। যুবার ভাব-নিচয়ে অনেক বৃদ্ধেরও জ্ঞানোদয় হইবার সম্ভাবনা। গ্রন্থখানিকে সুখবোধ্য করিবার উদ্দেশে আপনি শেষে কবিতাগুলির পদ্যে বঙ্গানুবাদ দিয়াছেন; সেগুলিও সুন্দর হইয়াছে। এবং যে যে স্থলে সংস্কৃত শ্লোকগুলির ভাব কিছু দুরূহ হইয়াছে, সেই সকল স্থলে বঙ্গানুবাদ বিশেষ আনুকূল্য সম্পাদন করিয়াছে। ফলতঃ

আপনার গ্রন্থখানি পাঠ করিলে সহৃদয়মাত্রেই অতিশয় আনন্দ অনুভব করিবেন সন্দেহ নাই। ইতি

আপনার
শ্রীহরিশ্চন্দ্র শর্ম্মা (কবিরত্ন)
সংস্কৃতাধ্যাপক,
কলিকাতা প্রেসিডেন্সি কলেজ।

विक्रमपुरजनपदनिवासिना श्रीयुता भुविनाथचन्द्र-चक्रवर्त्तिना कविताकोरकनामधेयं यत् खण्डकाव्यं रचितं, तत् सरससरलपदप्रमाण-समन्वितं प्रसादगुणयुक्तञ्च; तद्दृष्ट्वा कस्य न आनन्दसन्दोहो जायते? परमार्थतः पुस्तकमिदमाद्योपान्तं पठित्वा अस्माकम् अनिर्व्वचनीया प्रीतिर्जाता। धुवड़ी-इंरेजीविद्यालयस्य गुणवद्विद्यार्थिनां वार्षिकपारि-तोषिकवितरणसंसदि कतिपयवत्सरं यावत् एतत्पुस्तकान्तर्गतं द्विवि-ऋतुवर्णनं समवेतैश्छात्रैः समस्वरेण प्रगीतमासीत्। तद्धि श्रोतृवृन्दस्य श्रवणसुखदं अन्यमादास्पदञ्च बभूव। आशास्महे सहृदयाः सुधियः एतत्पठनेन सत्काव्यपाठसुखमनुभविष्यन्तीति।

धुवड़ी
२६ माघः १३०६

श्रीमोहिनीमोहनशर्म्माणो
विद्यालङ्काराः
धुवड़ी हाइ स्कुल-प्रधान-पण्डिताः।

कविताकोरकम् ।

पितृस्तवाष्टकम्[1] ।

अतिदुर्लभमुत्तममप्यलभे
यदनुग्रहतो नरजन्म भवे ।
शिरसा वचसा मनसा सततं
तमहं पितरं प्रणमामि हितम् ॥ १ ॥

चरतीह तनूतरुरेष चलः
पटुयौवनपुष्प उपाधिफलः[2] ।
मम यत्प्रभवः सुषमोऽवहितं
तमहं पितरं प्रणमामि हितम् ॥ २ ॥

उपदेशशतैश्च हितैः सततं
सदृशं वहता निजसच्चरितम् ।
मम येन चिरं चरितं घटितं
तमहं पितरं प्रणमामि हितम् ॥ ३ ॥

---

१ । वृत्तमत्र तोटकम् । तल्लक्षणं यथा—वद तोटकमब्धिसकारयुतम् ।

२ । उपाधिफलः—उपाधिः उन्नतिः एव फलं यस्य सः ।

शिवकल्पमकल्पितकल्पतरुं
मम पूज्यतमं परमञ्च गुरुम्।
स्वत एव यतश्च हितं विहितं
तमहं पितरं प्रणमामि हितम्॥ ४॥

मम जीवननिर्वृतिभावनया
विनयोन्नतिमङ्गलसाधनया।
निजजीवितमेव यतः स्वर्पितं
तमहं पितरं प्रणमामि हितम्॥ ५॥

निगमस्य यथार्थवरेण्यगणैः
शिरः[1]धार्य्यमवश्यमुपास्यधनैः।
खलु यस्य मयाश्रुतवाक्यशतं
तमहं पितरं प्रणमामि हितम्॥ ६॥

गृहजीवनकोमलधर्म्ममतः
मम येन च कारितमाचरतः।
चिरबन्धुवधूमिलनं ललितं
तमहं पितरं प्रणमामि हितम्॥ ७॥

१। अदन्तशिरश्शब्दप्रयोगोऽपि दृश्यते।

प्रियकर्म्म विधेयमिहास्य सतः
समुपास्यसुरस्य च मूर्त्तिमतः।
चरणार्चनपुण्यकरः सततं
तमहं पितरं प्रणमामि हितम् ॥ ८ ॥

मातृस्तवाष्टकम्[१]।

वन्द्यं मे मङ्गलनिकरकरं
मन्दस्मालं हृदयमलहरम्।
सानन्दं सुन्दरतमममलं
वन्दे मातस्तव पदकमलम् ॥ १ ॥

प्रत्यग्रं नन्दनवनकुसुमं
मन्दारादेरत बहुसुषमम्।
पुण्यामोदं विमलपरिमलं
वन्दे मातस्तव पदकमलम् ॥ २ ॥

१। वृत्तमत्र भ्रमरविलसिता। मो भो नौ गौ भ्रमरविलसिता।

ध्यात्वा ध्यात्वा प्रणिहितमनसा
धृत्वा धृत्वा सुविनतशिरसा ।
बद्धा बद्धा करतलयुगलं
वन्दे मातस्तव पदकमलम् ॥ ३ ॥

देवीमूर्त्तें नियतमनुपमे
याचे हृन्मन्दिरमधिवस मे ।
कृत्वान्तर्भक्तिसलिलतरलं
वन्दे मातस्तव पदकमलम् ॥ ४ ॥

कारुण्योत्सस्तव खलु हृदयं
धारापूर्णं वहिरमृतमयम् ।
वाञ्छेऽभ्युदयम्मम शरणमलं
वन्दे मातस्तव पदकमलम् ॥ ५ ॥

त्वं मे स्वर्गस्त्वमसि मम गुरु-
स्त्वं मे धर्म्मस्त्वमिह सुखतरुः ।
सर्व्वस्वं मे भव-मरु-सलिलं
वन्दे मातस्तव पदकमलम् ॥ ६ ॥

स्वर्ग्यं तेऽन्तःकरणगुणचयं
कान्तं संक्रामय मयि सदयम् ।
देहि त्वं दुर्ब्बलहृदि च बलं
वन्दे मातस्तव पदकमलम् ॥ ७ ॥

कष्टं सोढ़ं किमिव मम कृते
निःस्वार्थं सन्ततहितनिरते ।
स्मृत्वा चित्तं भवति हि विकलं
वन्दे मातस्तव पदकमलम् ॥ ८ ॥

ग्रीष्मः ।

नवमतिमञ्जु पयोधरपुष्पं
नवमतिमञ्जु वयोदलशष्पम् ।
इह च जनः किल मञ्जुलतर्षः
शुचिरितिवैति नवीकृतवर्षः[१] ॥ १ ॥

---

१ । नवं हि पयोधरपुष्पादिकं सुन्दरं, नूनमतः सर्व्वमेव नवं सुन्दरं, जनश्चेह सर्व्व एव सौन्दर्य्यप्रिय इत्येवं मन्यमान इव निदाघर्त्तुर्लोकानां मनोरञ्जनार्थं पुरातनं वर्षं नवीकृत्य एति इत्यर्थः । वृत्तमत्र तामरसम् । इह वद तामरसं न ज-जा यः ।

खरतरसौरकरक्रियमाण-
सकमलराजिसरोरसमानः।
अतिशयभीततिरोहितवर्षः
शुचिरयमेति नवीकृतवर्षः ॥ २ ॥

रविवसुतापितपल्वलमन्त-
र्न विचलितो जलधिर्न च तान्तः।
इत इव दर्शितनीचनिकर्षः
शुचिरयमेति नवीकृतवर्षः ॥ ३ ॥

ज्वलयति सत्त्वसमाकुलदावं
निजकुलभस्म विभीषणरावम्।
तरुनिकरः सपरस्परघर्षः
शुचिरयमेति नवीकृतवर्षः ॥ ४ ॥

विहितमरण्यमलं प्रतिमध्य-
न्दिनतपनेन तपोवनमेध्यम्।
पशुरिह निर्भयवैरसमर्षः[१]
शुचिरयमेति नवीकृतवर्षः ॥ ५ ॥

१। निर्भयवैरसमर्षः—निर्गतः भयं वैरं च यस्य स निर्भयवैरः स चासौ समर्षश्चेति।

मरुरतिभीषणमूर्त्तिरपारः
खल इव किं-सिकतातुलसारः[१] ।
अविरलबाष्पहलाहलवर्षः
शुचिरयमेति नवीकृतवर्षः ॥ ६ ॥

परिणतसुन्दरजम्बुरसालः
सरसमनोहरकण्टकितालः ।
वननिवहः सफलोऽद्य सहर्षः
शुचिरयमेति नवीकृतवर्षः ॥ ७ ॥

गतमधुयौवनपुष्पितकार्य्यम्[२]
अधिगततुल्यफलं कृतकार्य्यम् ।
जगदधुनेति समुन्नतहर्षः
शुचिरयमेति नवीकृतवर्षः ॥ ८ ॥

१। किं-सिकतातुलसारः—सिकताः इव किं कुत्सितम् अतुलं विपुलं सारं धनं यस्य स इति खलपक्षे। मरुपक्षे तु किं कुत्सिताः सिकताः एव अतुलः अमितः सारो यस्य स इति।

२। गतमधुयौवनपुष्पितकार्य्यम्—गतं मधुः वसन्तः एव यौवनं तस्मिन् पुष्पितं पुष्पमयं कार्य्यं यस्य तत्।

विकसितकोमलकोरकजाले
ललितरुचिर्दिवसोऽन्तिमकाले ।
हरति मनः सुमनः-परिमर्शः[१]
शुचिरयमेति नवीकृतवर्षः ॥ ९ ॥

नदति विहङ्गगणोऽमृतवर्षं
कृतकवनं[२] मधुवर्षि सहर्षम् ।
किरति सुधाञ्च शशी शुभदर्शः
शुचिरयमेति नवीकृतवर्षः ॥ १० ॥

भ्रातः !

अमृतसमानं विभुगुणगानं
कुरु धृततानं सहृदयदानम् ।
परिहर कामं रिपुमभिरामं
भज शिवरामं विधिमविरामम्[३] ॥ ११ ॥

१। सुमनः-परिमर्शः—सुमनोभिः कुसुमैः परिमर्शः सम्पर्को यस्य सः। दिवसः इत्यस्य विशेषणम्।

२। कृतकवनम्—कृत्रिमवनम्, उपवनम् इति यावत्।

३। छन्दश्च कुसुमविचित्रा। न-य-सहितौ न्यौ कुसुमविचित्रा।

वर्षा:[1] ।

जलदोऽम्बु वर्षति रुवन्ति च भेका
झटिका वहन्ति निपतन्ति च वृक्षाः ।
चपला च खेलति बिभेति च बाल:
समुपस्थितोऽयमधुनाम्बुदकाल: ॥ १ ॥

अतिलुप्तदर्शनरवीन्दुरजस्रं
क्षरतीह तोयमिव दिग्वनितास्रम् ।
करकाशताशनिनिपातकराल:
समुपस्थितोऽयमधुनाम्बुदकाल: ॥ २ ॥

नववारिवर्षणमवाप्य कृतार्थ:
शतशो नदी: सृजति भूतहितार्थ: ।
धरणीधरो विधृतवारिदमाल:
समुपस्थितोऽयमधुनाम्बुदकाल: ॥ ३ ॥

चिरपीयमाननवनीरदनीलं
गगनं हि नेत्रयुगलैरवलीलम् ।
विचरन्ति चातकगणाश्च रसाल:
समुपस्थितोऽयमधुनाम्बुदकाल: ॥ ४ ॥

१। वृत्तमत्र कलहंसः । सजसाः सगौ च कथितः कलहंसः ।

कलकण्ठचातककुलं न-विनीतं
लयतानयुक्तललितं किल गीतम् ।
कुरुते सदा क्षुधितयाचकपालः
समुपस्थितोऽयमधुनाम्बुदकालः ॥ ५ ॥

जलदान्तिकेषु विहरन्ति बलाकाः
खलु लक्ष्य-नन्दन-मनोहर-नाकाः[१] ।
चपलाद्युतोभिहिमसुन्दरमाल-
मधुनागतो हि मधुराम्बुदकालः ॥ ६ ॥

कलधौतरेखनिकषोपलभाति-
विलसत्तडिद्घन इव प्रतिभाति ।
सरमाढ्यहैमलतकण्ठतमालः[२]
समुपस्थितोऽयमधुनाम्बुदकालः ॥ ७ ॥

---

१ । लक्ष्य-नन्दन-मनोहर-नाकाः—लक्ष्यः नन्दनेव नन्दनकाननेन मनोहरः नाकः यासां ताः ।

२ । सरमाढ्यहैमलतकण्ठतमालः—रमा शोभा तया आढ्या युक्ता हैमलता तया सहितः सरमाढ्यहैमलतः, कण्ठ श्यामवर्णेन तमालः । सुवर्णसूत्रवर्णकलापवनायतमालतरुरिव विलसत्तडिद्घनः प्रतिभाति इत्यर्थः । यथा रमा लक्ष्मीः वा आढ्यहैमलता कण्ठविभाविनी स्वर्णलता इव तथा

मुरजध्वनि ध्वनति खे विचरिष्णौ
शिखिनीह नृत्यति मुदा समयिष्णौ ।
हसतीव नीप इति पुष्पितभासः
समुपस्थितोऽयमधुनाम्बुदकालः ॥ ८ ॥

सुरराजचाप इति यद्दिवि दृष्टं
शिखिपुच्छमालिखितमस्ति विचित्रम् ।
त्रिदशैरवाप्य फलकं सुविशाल-
मधुनागतो हि मधुराम्बुदकालः ॥ ९ ॥

शरत् ।

घनानम्बराद्वार्षिकान् सारयन्ती[1]
प्रसादेन चाशाः[2] समुल्लासयन्ती ।
दिशन्ती च रूपं भुवे शोभनीयं
समायाति नूनं शरत्सुन्दरीयम् ॥ १ ॥

सहितः सरमाक्ष्वीमलतः कृष्णः यदुनन्दनः स तमाल इव । विद्युद्वर्णया रमया रमनाथः तमालकृष्णः कृष्ण इव विलसत्पिहितः प्रतिभाति इत्यर्थः।

१ । सारयन्ती—अपसारयन्ती । इतमत्र भुजङ्गप्रयातम् । भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः ।

२ । आशाः—दिग्वधूः ।

समालोकयन्ती सरोजे सहासं
समं लोकचित्तारविन्दे विकासम् ।
समन्ताच्च पद्मं प्रफुल्लं स्थलीयं
समायाति नूनं शरत्सुन्दरीयम् ॥ २ ॥

शनैः सैकतश्रोणिबिम्बे[१] पृथुत्वं
गतौ यान्ति मान्द्यञ्च मध्ये[२] तनुत्वम् ।
तटिन्योऽङ्गना यौवने वेक्षणीयं[३]
समायाति दृष्ट्वा शरत्सुन्दरीयम् ॥ ३ ॥

सितानम्बुमुग्धाः प्रियाश्चाम्बुवाहाः
प्रसन्नाल्पनीराश्च नद्यो निरीहाः ।
सतीशैः समत्वे सदा वर्त्तनीयं
समेति प्रमाणी शरत्सुन्दरीयम् ॥ ४ ॥

१। सैकतश्रोणिबिम्बे—सैकतवत् विपुले श्रोणिबिम्बे इति अङ्गनापक्षे। तटिनीपक्षे तु सैकतम् एव श्रोणिबिम्बं तस्मिन् इति।

२। मध्ये—कटिदेशे इति अङ्गनापक्षे। द्वयोः पुलिनयोः तट-सैकतयोर्वा इति तटिनीपक्षे।

३। ईक्षणीयं—दर्शनीयम्। वा इव। एवमन्यत्रापि।

घनाम्बुस्रुतिस्नातपूर्व्वां वराङ्गं
विपङ्कं मही पङ्कजामोदसङ्गम् ।
अलं बन्धुजीवैः करोति स्वकीयं
समायाति दृष्ट्वा शरत्सुन्दरीयम् ॥ ५ ॥

गतैश्चामरत्वं प्रसूनप्रकाशैः[१]
सुमन्दानिलान्दोलितानम्रकाशैः ।
करोतीव या वीजनं प्रीणनीयं
समायाति दृष्ट्वा शरत्सुन्दरीयम् ॥ ६ ॥

विनैवोपयोगं न किञ्चित्प्रशस्यम्
इतीवाखिलं कुर्व्वती शालिशस्यम् ।
विपाकेन रम्यं कृषेरर्हणीयं
समायाति नूनं शरत्सुन्दरीयम् ॥ ७ ॥

विपत्तेजसां गौरवायेति सत्यं
किरन् चन्द्रिकाजालमाह्लादमूर्त्तम्[२] ।
शशी भाति यस्मिन्नमुक्तोऽद्वितीयं
समायाति दिष्ट्या शरत्सुन्दरीयम् ॥ ८ ॥

१। प्रसूनप्रकाशैः—विकशितकुसुमैः, काशैः इत्यस्य विशेषणम् । काशैः—काशतृणैः । या मही ।

२। आह्लादमूर्त्तम्—आह्लादमूर्त्तिम् । आर्षे त्वः ।

गतं चाद्य वामा विनेतुं यतन्ते
मयूराश्च मञ्जु स्वनं नो द्रियन्ते।
न वेतीव हंसाः पदं को मदीयं
क्षिपन्त्येति नूनं शरत्सुन्दरीयम् ॥ ९ ॥

नभो निर्म्मलं व्यक्ततारावितानं
चिराच्चन्द्रपादैरलं शोभमानम्।
कुमुद्वत्सरो वा निशि प्रेक्षणीयं
समायाति दृष्ट्वा शरत्सुन्दरीयम् ॥ १० ॥

सरोजालयाक्षैरपापीयमानं
स्तुवन्ति प्रभातेषु तेजःप्रधानम्।
खगा वन्दिनो हारिगीतैश्च कान्तं
हरिं[1] ह्वेति नूनं शरत्सुन्दरीयम् ॥ ११ ॥

१। खगाः पक्षिणो वन्दिन इव स्तुतिपाठका इव प्रभातेषु हारिगीतैः मनोहरगानैः हरिं सूर्यं स्तुवन्ति। सूर्यं किम्भूतम्? सरोजालयाक्षैरपापीयमानम्—सरोजालयः सरोवरस्तस्य अक्षाणि पद्मानि एव ईक्षणानि चक्षूंषि तैरापीयमानम्। पुनः किम्भूतम्? तेजःप्रधानम्—ज्योतिष्कपदार्थानां सर्वप्रधानम्। सूर्योऽपि किम्भूतम्? कान्तम्—

दिवो देवकृष्णादिदानीञ्च नोनः[1]
किलैवं हि मर्त्त्यो मनोरञ्जनो नः।
नमामस्तमीशं जगद्वन्दनीयम्
अहो येन सृष्टा धरासुन्दरीयम्॥ १२॥

शीतः[2]।

विगते वयसि प्रथमे शिथिल-
स्तनुकान्तिगुणो भवति क्रमशः।
प्रसवस्त्वतः स्खलने हि रतः
शिशिरः समुपागत एष यतः॥ १॥

कमनीयम्। प्रभातसूर्यो हि कमनीयकान्तिः। यथा—खगा व्योमचारिणो बन्दिनः अमरबन्दिन इत्यर्थः हरिं विष्णुं स्तुवन्ति। विष्णुं किम्भूतम्? सरोजाक्षया पद्माक्षया लक्ष्म्याः तस्याः अक्षिपक्षेण पक्ष्मणैव आपीयमानं सतृष्णं दृश्यमानम्। तेजःप्रधानम्—तेजस्विनां प्रधानम्। कान्तम्—दयितम्।

१। नोनः—न ऊनः।

२। छन्दश्च तोटकम्। अथवा तूर्णं शाक्।

तरवो विगलत्कुसुमच्छदना-
स्तुलयन्ति तपःक्षशसंहननान्[1] ।
विजहद्विषयानभिख्यं जवतः
शिशिरः समुपागत एष यतः ॥ २ ॥

महिमा परमः प्रकृतेर्हिमवान्
धवलो धवलः क इवातिमहान् ।
इह मे तनुवाग्विभवो विहतः
शिशिरः समुपागत एष यतः ॥ ३ ॥

धनदानुगृहीतहरिप्रियया
मिलितुं त्वरते तपनश्च तया ।
सुखमुच्छ्वसितं मिहिकाच्छलतः
शिशिरः समुपागत एष यतः ॥ ४ ॥

जनसेव्य इतीव शशी न सदा-
ऽधिगुरुर्वनिताश्रुमुखी क्षणदा ।
अभिषिञ्चति गां तुहिनच्छलतः
शिशिरः समुपागत एष यतः ॥ ५ ॥

---

१ । तपःक्षशसंहननान्—तपसा क्षशं संहननं शरीरं येषां तान् ।

मलिनच्छविरर्क उषा[1] च ततः
समवेदनया विकलीभवतः।
विहताम्बुधुराद्विकिरो विरतः
शिशिरः समुपागत एष यतः ॥ ६ ॥

तमः[2]सारसातलमेव गतिः
खलु मेऽतिखलस्य फणीतिमतिः।
श्रयते शुषिरं शिरसावनतः
शिशिरः समुपागत एष यतः ॥ ७ ॥

रुचिरौ न शुचाविव वार्य्यनिलौ
विषमौ[3] न च तावपि रव्यनलौ।
प्रियताप्रियते चरिताद्भवतः
शिशिरः समुपागत एष यतः ॥ ८ ॥

१। अकारयुक्त उषाशब्दोऽपि दृश्यते।
२। सदन्ततमश्शब्दप्रयोगोऽपि दृश्यते।
३। विषमौ अप्रियौ।

अधुनास्ततरायुरश्रेयसुखः[1]
खलु दुःखकुहालिविवर्णमुखः[2]।
स्थविरो दिवसः समताञ्च गतः
शिशिरः समुपागत एव यतः ॥ ८ ॥

वसन्तः।

राजन्यपूर्व्वां श्रियमाश्रयन्तः
प्रवालपुष्पैस्तरवो वसन्तः।
ज्ञातान्तकल्पो हि हिमो गतोऽस्तं
दृष्ट्वागतं सन्तमथो वसन्तम् ॥ १ ॥

१। अश्रेयसुखः—न श्रेयम् अपरिमितं सुखं यस्य सः। इदस्य सुखसूर्य्यः अस्तमितः इति भावः, इति स्थविरपक्षे। दिवसपक्षे तु न श्रेयि अवसाने सुखः सुखकरः इति। प्रदोषः प्रातिव न रमणीय इति भावः।

२। दुःखकुहालिविवर्णमुखः—कुहा कुज्झटिका तस्याः आलिः श्रेणी कुहालिः। दुःखं कुहालिरिव तया विवर्णं मुखं वदनं यस्य स इति स्थविरपक्षे। दुःखा दुःखदायिका अप्रीतिकरा इति यावत् कुहालिः तया विवर्णं मलिनं मुखं प्रथमभागो यस्य स इति दिवसपक्षे।

वहन्ति वाता मलयाश्च मन्दं
मन्दं समन्तात् सुमनः-सुगन्धम् ।
भृङ्गानुकूलाः सुतरां किरन्तः
समागतोऽयं सुखदो वसन्तः ॥ २ ॥

नृत्यन्ति बाला लतिकाश्च कुञ्जे
गुञ्जद्विरेफा मधुपुष्पपुञ्जे ।
गायन्ति कर्णामृतमुद्गमन्तः
समागतोऽयं सुखदो वसन्तः ॥ ३ ॥

आपूरयन्तोऽखिलदिग्दिगन्तं
कूजन्ति कान्तासहिताः सुकण्ठम् ।
पिकाः प्रकामं मदमावहन्तः
समागतोऽयं सुखदो वसन्तः ॥ ४ ॥

दिवा निशायामनिशं सुरङ्गाः
नदन्ति नाना मधुरं विहङ्गाः ।
मनो जनानामनुरञ्जयन्तः
समागतोऽयं सुखदो वसन्तः ॥ ५ ॥

नवां नवां कामिव यान्ति कान्तिं
दिने दिने यौवनमाश्रयन्तीम्।
अङ्गान्यवन्या निखिलानि हन्त
समागतोऽयं सुखदो वसन्तः ॥ ६ ॥

वाणीनिकुञ्जे तरुणा भवन्तः
कुर्व्वन्तु केलिं रुचिरे चरन्तः।
रसन्तदीयप्रसवात् पिबन्तः
समागतोऽयं भवतां वसन्तः ॥ ७ ॥

धनानि मानाननधीनवृत्तिं
दानावदानैरवदातकीर्त्तिम्।
लब्ध्वा रमन्तामिह भूवनान्तः[1]
समागतोऽयं भवतां वसन्तः ॥ ८ ॥

कृत्वा स्थितं नन्दनकाननान्ते
रम्ये जनानामपि जीवनान्ते।
सोपानतां यान्त्विव तन्वयन्तः[2]
समागतोऽयं भवतां वसन्तः ॥ ९ ॥

१। भूवनान्तः—भूरेव वनं तस्य अन्तः मध्ये।

२। जीवनान्तेऽपि जनानां स्थितं कृत्वा तत् स्थितं सोपानतां.

युवा ।

भ्रूभेदमात्रहृतजीवितजिष्णुकामो
योगी स्वयं त्रिदशसेव्यपदोऽफलेषो ।
विश्वस्य योनिरभवो विलयोऽपि यस्मिन्
भूयिष्ठभूतिरवतादशिवात् शिवो वः[1] ॥ १ ॥

अधीतशास्त्रस्तरुणः प्रवीणो
निसर्गशोभां विचरन् दिदृक्षुः ।
शुचौ निसर्गैकरसः प्रदोषे
जगाम कश्चिज्जलराशिवेलाम् ॥ २ ॥

महानयं मारुतनोदितैर्मे
क्षमं मुदम्बम्बुकणैः कृपालुः ।
कलं नदन् वीचिभुजैः समुद्र-
मालिङ्गतीवेति मुदं युवाप्नोत् ॥ ३ ॥

मयन्त • इव रम्ये नन्दनकाननान्ते यान्तु भवन्त इति शेषः—
इत्यन्वयः ।

१ । वृत्तमत्र वसन्ततिलकम् । ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः

हृदयञ्च युक्तं जलधेरुपास्तिः[१]
सतो महांस्तद्विषयश्च बोधः ।
परोपकारेषु रता महान्तः
जानन्ति तेषां चरितानि धीराः ॥ ४ ॥

स्तुतेश्चितोदग्रयशोऽम्बुराशेः
समेधिता आन्तरभावभङ्गाः ।
विनिर्ययुस्त्वात्मनि तस्य लेतुम्[२]
अप्राप्नुवन्तो बत वाक्पथेन ॥ ५ ॥

अकिञ्चनं क्षुद्रतरं युवानं
प्रभुश्च रत्नाधिपतिः पुराणः ।
अवेक्षते मां सदयं न वक्रं
दुष्प्राप एवास्य समानधर्मा ॥ ६ ॥

दशास्यराहुक्षपितप्रियेन्दो-
रयं हि रामस्य शुचं विनेतुम् ।
शिलोच्चयं प्रत्युरसं दधार
उपाय मत्वा प्रियजीवितं स्वम् ॥ ७ ॥

---

१ । उपास्तिः सेवा शुश्रूषेति यावत् ।

२ । लेतुम्—स्थातुम् ।

रिपुस्तथाप्यस्य हरेश्च येन
निवेश्य वह्निर्म्रियतेऽनुवेलम्।
स्वस्यात्मनाशेन स[1] पुष्यते च
भेदग्रही नाम फलं विपत्त्याः ॥ ८ ॥

सुरासुरास्तं सुतरां ममन्थु
रत्नानि हृद्यानि ददौ स धन्यः।
तज्जा[2]ऽतिनष्टापि च रत्नसूर्भू-
रलौकिकं किं खलु नास्य वृत्तम् ? ॥ ९ ॥

नेदिष्ठकक्षायसचुम्बिनास्य
स्वात्मीयकान्तेन कृतक्षतापि।
दूराद्गुणैर्यं हि विलक्ष्यमाणा
भजन्ति नद्यो गुणमब्धिघोषम् ॥ १० ॥

भूतानुकम्पी समपक्षपातः
प्रेमैकमग्नोऽव्यसनो यथायम्।
भवोऽभविष्यद्यदि नष्टमर्त्त्या-
ऽभोक्ष्याम आभीक्ष्ण्य[3]मिहैव नाकम् ॥ ११ ॥

१। स प्रसिद्धो वाड़वाग्निः। २। तज्जा—तस्मात् समुद्रात् जाता।
३। आभीक्ष्ण्यम्—पर्य्यन्तम्।

यदृच्छयैवं नयनं प्रतीच्यां
सतः सखेदं वदतः पपात ।
ईर्षावशस्येव रविस्यकर्ष
लब्धावकाशोऽस्य मनोऽब्धिनिष्ठम् ॥ १२ ॥

अस्तं प्रयान्तं गणयन् विपन्नं
खिन्नारविन्दानन आधिनेव ।
जगाद भद्रः करुणं तमुच्चै-
र्मूकाः परेषां व्यसनेऽश्रमचित्ताः ॥ १३ ॥

क्व यासि भानो विरम क्षणं भोः
पृच्छाम्यहं ते वद का दशेयम् ।
क्व ते स तेजोविभवः कथं वा
व्यवस्यसीव स्वयमेव मर्त्तुम् ॥ १४ ॥

शङ्के सुखस्पर्शकरं शशाङ्क-
मुज्ज्वलो भीमकरैर्निरस्य ।
गृहीतराज्यः सहसा विहस्तो
निर्व्वासितस्तेन पुनश्च दीनः ॥ १५ ॥

समुन्नतिं हीनदशामतीत्य
लभेत लोको यदि यत्नशीलः ।
उच्चस्थतोऽधःपतनञ्च भाव्यं
कार्य्यैर्न वाक्यैरुपदेष्टुकामः ॥ १६ ॥

आयान्ति हन्त क्षणमेत्य यान्ति
सुरूपसम्पत्सुखयौवनानि ।
इत्येव किंवा नृषु सम्प्रमातुं
पूर्व्वाचलाद्दूरगतोऽस्तमेषि ॥ १७ ॥ युग्मम् ।

द्रुतं पुरोऽयं परिदृश्यमानः
क्रूरोऽभिसूर्य्यं चलितोऽभ्रदैत्यः ।
प्रसह्य ह्याक्रामति दीनमेनं
द्वारं हि सत्यं व्यसनं बहूनाम् ॥ १८ ॥

धिक् त्वाम् शरीरे खलहस्त मेघ
कस्ते गुणः पीड़यतो मुधैनम् ।
परापकारस्तव मोदहेतु-
र्व्वज्रैर्हसन्नेव निहंसि जन्तून् ॥ १९ ॥

धिक् त्वाम् अरेरेऽकृतविद्[१]दुरात्मन्
करात्ततोयस्तव जन्मदोऽयम् ।
तस्यैव मथ्नासितरां न जाने
का ते गतिः स्यात् पवनेऽतिदुष्टे ॥ २० ॥

उदेति दिष्ट्या परिदृश्यतेऽसौ
स्मेराननः पूर्णकलः सुधांशुः ।
सुधाभिवर्षी स्नपयन् सुतप्तां
पृथ्वीं, परार्द्धः प्रतियोग ईदृक् ॥ २१ ॥

शीतागमः सज्जयितुं वसन्तं
स्याद्भूत् सरित्स्नात् सुखसैकताय ।
सुदुःसहात् तेजस एष सोमो
दुःखं सुखायैव विधेर्विधिः स्यात् ॥ २२ ॥

काममप्यभिख्यां कलधौतचक्रं
साङ्कं दधात्येव कुतोऽन्यथा सा[२] ।
भूपद्मलं किं वनिताश्वविश्वं
लोमादि नो चारुतरञ्च पद्मम् ॥ २३ ॥

१। अकृतवित्—अकृतज्ञ। २। सा अभिख्या।

अनात्मनीनो न हि मे कलङ्कः
कृत्वाऽकलङ्कं[1] कुरु मा कलङ्कम् ।
इत्यर्हितोऽब्धिः कृतवानमोघां
मन्ये नदीषेण कलासु[2] याञ्चाम् ॥ २४ ॥

चिरं कथं कुक्षिगतोऽन्यथाब्धे-
रक्षालिताङ्गोऽनिशधौतगात्रः ।
कथं सदोषः सुषमाप्रियोऽसौ
न लज्जते वा हसतीव सुश्रीः ॥ २५ ॥

नीलं ललामं किमदः कुतस्त्वं
मृगोऽथवा किं हरिणः किमङ्गा ।
नाद्यो न चान्त्यो ननु निश्चिनोमि
वर्णात्मिका विश्वविधेस्तु लेखा ॥ २६ ॥

ज्ञानावलिप्ताः प्रणिधत्त मुग्धा
व्यासक्तचित्ता विषयेषु मिथ्या ।
जानीत सत्यं मनुजा मदीयो-
ऽक्षराक्षरन्यास इतो हितो वः ॥ २७ ॥

---

१ । अकलङ्कम्—अङ्करहितम् ।

२ । कलासु नदीषेण कलाभिज्ञेन ऋषिणा ।

उत्पद्यते मूर्च्छति पूर्य्यतेऽयं
पूर्णः क्षणं जीर्य्यति नश्यतीत्थम् ।
शश्वच्छरीरञ्च शरीरिणां वो
जातस्य सामान्यविधिः पुनर्भूः[1] ॥ २८ ॥

धर्म्मं प्रशान्त्यर्णवमाश्रयध्वं
जन्मघ्नमन्तर्विमलीकुरुध्वम् ।
सुदर्शनास्त्रेण पराजयध्वं[2]
रिपूंश्च सर्व्वान् प्रबलप्रतापान् ॥ २९ ॥

स्पष्टं यदेतल्लिखितं विधात्रा
नरा न पश्यन्ति पठन्ति नापि ।
संत्यज्य दोषन्तु रटन्त्यदोषे
यशोऽयशो यज्जनजिह्व[3]जन्यम् ॥ ३० ॥

---

१ । पुनर्भूः—पुनर्भवः पुनर्जन्म इति यावत् ।

२ । क्रियापदेऽत्र ध्वंप्रत्ययम् आत्यन्तिकार्थद्योतनार्थम् ।

३ । अकारान्तजिह्वशब्दस्यापि प्रयोगो दृश्यते ; यथा "द्विसहस्रेण जिह्वेन वासुकिः प्रणयिष्यति" इति ।

अस्तीह किं कोऽप्यपर: पदार्थ:
परार्थजन्मा गुणरूपकान्त: ।
सुधानिषेकै: प्रकृतिं हि चण्डीं
प्रसाद्य सर्व्वान् स सुखाकरोति ॥ ३१ ॥

मनोहरासौ मधुराभिरामा
प्रशान्तमूर्त्तिश्च विविक्तवेशा ।
शोभां वधू: कां प्रकृतिर्विभर्त्ति
दृष्ट्वाद्य जातं सफलं हि नेत्रम् ॥ ३२ ॥

घनालिबाला[1] गगनालिका[2]ऽसौ
पयोधिजिह्वा च पलाशवासा: ।
अदृष्टपूर्व्वं रमणीषु रत्नं
न प्राकृतेयं रमणी तु देवी ॥ ३३ ॥

कादम्बिनीलम्बररुणारुणांशु-
सीमन्तसिन्दूरविभूषणासौ ।
अनन्यभूषा नयनाभिरामा
न प्राकृतेयं रमणी तु देवी ॥ ३४ ॥

---

१ । घनालिबाला—घनालिर्मेघमाला एव बाल: केशकलाप: यस्या: सा ।

२ । गगनालिका—गगनम् एव अलिकं ललाटं यस्या: सा ।

सुदूरसंस्थाविपुलायमान-
चन्द्रानना[1]सावनिलास्यवायुः[2] ।
विहङ्गकण्ठालपिताऽविलासा
न प्राकृतेयं रमणी तु देवी ॥ ३५ ॥

न हैमभूषातिभरावनम्रा
रम्याम्बरं रत्नचितं न धत्ते ।
तथापि वामा नयनाभिरामा
न प्राकृतेयं परमा हि देवी ॥ ३६ ॥

उत्कीर्णकर्णे चलकुण्डलं नो
नो वा रसन्ती रसना नितम्बे ।
तथापि वामा नयनाभिरामा
न प्राकृतेयं परमा हि देवी ॥ ३७ ॥

१। सुदूरसंस्थाविपुलायमानचन्द्रानना—सुदूरे संस्था अवस्थितिः तस्मात् ईषीः अविपुलायमानः चन्द्रः एव आननं यस्याः सा ।

२। अनिलास्यवायुः—अनिलः एव आस्यवायुः मुखमारुतः यस्याः सा । यो हि अनिल इति लोके प्रसिद्धः स प्रकृत्या निश्वासवायुरित्यर्थः ।

न गोस्तनौ वक्षसि राजतेऽस्याः
सम्यञ्चितौ वा चरणौ न रक्तैः[1] ।
तथापि वामा मुनिमानसघ्ना
न प्राकृतेयं परमा हि देवी ॥ ३८ ॥

नोत्सादनं[2] वा भजते न मार्ष्टिं[3]
चर्चां न जानाति च चन्दनानाम् ।
तथापि गात्रं सततं सुगन्धि
न प्राकृतेयं परमा हि देवी ॥ ३९ ॥

बाला न वृद्धा युवतिर्न किंवा
न कोऽपि निर्णेतुमलं वयोऽस्याः ।
समं मनोज्ञा शिशुवृद्धयूनां
न प्राकृतेयं परमा हि देवी ॥ ४० ॥

ये ये युवानो युवजानयो ये
या या युवत्यो युवकप्रिया याः ।
आगत्य तां पश्यत विप्रयातु
नेपथ्यसाध्या सुषमेति बुद्धिः ॥ ४१ ॥

१। रक्तैः कुङ्कुमादिभिः। २। उत्सादनम्—सुगन्धितैल-चन्दनादिलेपनम्। ३। मार्ष्टिम्—अङ्गमार्ज्जनम्।

कामप्रदां तां प्रमदामकामां
प्रकाममेनां ननु कामरूपाम् ।
सदा भजध्वं सुखदां युवानः
शिथिलमस्या इत या युवत्यः ॥ ४२ ॥

पिता पतिः को जननी च कास्या-
इत्येव चेत् पृच्छथ वो भणामि ।
नास्त्येव माता जनकश्च नास्ति
भर्त्ताऽविनाशो विदितः स आत्मा ॥ ४३

नित्याऽमरा या त्रिगुणात्मिकाऽजा
स्वयं निरीहेण सनातनेन ।
अव्यक्तरूपा विजहार येन
ययोश्च योगाज्जगती प्रजाता ॥ ४४ ॥

तत्रैव चात्मा प्रकृतिश्च यत्र
स एव चात्मा प्रकृतिश्च यैव ।
तथापि भिन्नः पुरुषः प्रधानात्
भेदेऽप्यभेदो न तथाप्यभेदः[१] ॥ ४५ ॥

१। तथापि अभेदेऽपि न अभेदः, भेदोऽस्ति इत्यर्थः ।

अङ्गेषु यस्याः सकलेषु सम्यग्-
व्याप्तोऽवियुक्तश्च विराजते यः ।
पयोदपङ्क्तेरिव वैद्युताग्नि-
र्नाविष्कृतायाः[1] मणिवच्च खन्याः ॥ ४६ ॥

नमामि मातर्जगतां निदानं
त्वामाद्यशक्तिं किल विश्वरूपाम् ।
बाले प्रसन्नास्य विभुं शरण्यं
प्रदर्शय प्राणवती यतस्त्वम् ॥ ४७ ॥

हरेः पदं शब्दगुणं ह्यनन्तं
त्वां व्योमदेव प्रणमामि याचे ।
गायन् गुणान् प्रीणय मामजस्रं
त्वं[2] वेत्सि नूनं तमनन्तशक्तिम् ॥ ४८ ॥

सदागते स्पर्शगुण प्रसीद
तुभ्यं जगत्प्राण नमो नमोऽस्तु ।
आलिङ्ग्य गाढं हर मे रजस्त्वं
जगन्महाप्राणसुपक्षपूतः ॥ ४९ ॥

---

१ । नाविष्कृतायाः—अनाविष्कृतायाः ।

२ । अनन्त एव अनन्तं जानाति, न साक्षः ।

तमोनुदं त्वां जगतां प्रकाशं
वन्दे शुचे रूपगुण प्रसीद ।
प्रदीप्यमानो हर मे तमस्त्वं
प्रकाशयात्मानमजं हृदिस्थम् ॥ ५० ॥

त्वां नौमि शीतं सितमम्बुदेव
प्रदर्शय त्वं जगदीशबिम्बम् ।
आदर्शतामेव गतोऽमलां मां
संसारदावानलदह्यमानम् ॥ ५१ ॥

हिरण्यरत्नद्रुमशैलरूपां
त्वां प्राणदात्रीं फलशस्यरूपाम् ।
अनन्तरूपामवने नमाम्य-
नन्तं सदादर्शय दर्शयेशम् ॥ ५२ ॥

विभोर्वराङ्गाणि तथापचिन्वतः[१]
कुतोऽपि दृष्ट्वा सहसैव वाक्पथम् ।
मुदः प्रवाहैः क्षतमस्य लोचनं
हिमैर्हताद्रं नलिनीदलं यथा ॥ ५३ ॥

१। अपचिन्वतः—अर्चयतः। उत्तमच अंशस्वविषम्। वदन्ति अंशस्वविषं जती जटी।

समाधिना ध्रुव इव मुद्रितेक्षणो[१]
जितेन्द्रियो गगनतलाहितानन:।
विचिन्तयन् भुवि ग्रथित: सनातनं
भवाम्बुधौ तरणिमतीन्द्रियं चिरम् ॥ ५४ ॥

न नुदतु कुलमिन्द्रो जातु दिव्याङ्गनानां[२]
न खलु भवतु यूनो योगिनो योगभङ्ग:।
हरिहरविधियुक्तोऽसौ सहस्रारपद्मे
विचरतु सुरलोकं प्राप्य चन्द्रार्कलोकौ ॥ ५५ ॥

१। वृत्तमत्र रुचिरा। जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहै:।

२। वृत्तमत्र मालिनी। न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकै:।

समाप्तम्।

কবিতাকোরক।

পিতৃস্তবাষ্টক।

জীবকুলে সুদুর্লভ, অতিশ্রেষ্ঠ, সার
লভিনু মানবজন্ম প্রসাদে যাঁহার,
কায়মনোবাক্যে সেই দেব-অবতার
পিতার চরণে আমি করি নমস্কার ॥ ১ ॥

এ ভবে আমার এ যে দেহ-তরুবর
সতত গমনশীল, সর্ব্বাঙ্গসুন্দর
করে বিচরণ, ফুল ফুটন্ত যৌবন
যার, অনন্ত উন্নতি ফল সুশোভন,
এ তরুর মূল যিনি, সেই হিতকারী
পিতার চরণে আমি নমস্কার করি ॥ ২ ॥

অবিরত কত হিত-উপদেশ-দানে,
অনুরূপ কর্ম্ম করি নিজের জীবনে,
কাজে ও কথায় ঠিক ঐক্য দেখাইয়া,
আদর্শ চরিত্রখানি সম্মুখে ধরিয়া,

গড়িল যে সযতনে চরিত্র আমার,
সেই পিতৃদেবপদে করি নমস্কার ॥ ৩ ॥

পিতা মোর শিবতুল্য শুভকারী গুরু,
পরম আরাধ্য, ভবে মূর্ত্ত কল্পতরু,
না চাহিতে দেয় সব অভাব যেমন,
পূজা করি আমি তাঁর পবিত্র চরণ ॥ ৪ ॥

আহারে বিহারে সদা ভাবনা যাঁহার
কিসে সুখশান্তি হবে জীবনে আমার,
সুশিক্ষা, উন্নতি আর মঙ্গলসাধনে
করিছে জীবনক্ষয় আনন্দিত-মনে,
দয়াময় পিতা মোর মূর্ত্তি দেবতার,
নমস্কার করি আমি চরণে তাঁহার ॥ ৫ ॥

সদাচার-পরায়ণ, ধর্ম্মগতপ্রাণ,
যাগযজ্ঞে রত যত আর্য্যের সন্তান
আদরে মস্তকে ধরে, করে বহুমান
পবিত্র বেদের বাক্য অমৃতসমান,
সেইরূপ শিরোধার্য্য পিতার বচন,
পূজি আমি ভক্তিফুলে তাঁর শ্রীচরণ ॥ ৬ ॥

শুভদিনে করিলেন যিনি সম্পাদন
পবিত্র সংস্কার—শুভবিবাহবন্ধন,
পালিবারে স্থকোমল ধর্ম্ম গৃহস্থের,
মিলায়ে দিলেন যিনি বন্ধু জীবনের,
লভিনু সে ধর্ম্মপত্নী যাঁহার কৃপায়,
নমস্কার করি আমি তাঁর রাঙ্গা পায় ॥ ৭ ॥

প্রাণপণে প্রিয়কর্ম্ম সাধিব পিতার,
প্রাণান্তেও করিব না অপ্রিয় তাঁহার,
উপাস্য দেবতা মোর পিতা মূর্ত্তিমান্,
পূজি আমি তাঁর রাঙ্গা চরণ ছুখান,
হবে হস্ত শুচি, মলা রবে না আমার,
করযোড়ে নমি তাঁর পদে বার বার ॥ ৮ ॥

মাতৃস্তবাষ্টক।

অন্তর-কলুষ-হর, মঙ্গল-আকর,
সদা বন্দনীয়, অই অনিন্দ্য সুন্দর
পাদপদ্ম তব, আমি অধম সন্তান
আনন্দে বন্দনা করি, দাও পদে স্থান ॥ ১ ॥

নন্দন-কানন-জাত প্রত্যক্ষ কুসুম,
মন্দারাদি হ'তে কিংবা অধিক সুষম,
বিমল-আনন্দপ্রদ, পুণ্য-পরিমল,
বন্দি আমি মা তোমার চরণকমল ॥ ২ ॥

অবিরত কর-যুগে অঞ্জলি রচিয়া,
ধ্যানে মগ্ন একমনে একান্তে বসিয়া,
বিনতমস্তকে আমি করিয়া ধারণ,
পূজা করি মা তোমার কমল-চরণ ॥ ৩ ॥

নিরুপমা দেবীমূর্ত্তি তুমি এ সংসারে,
অধিষ্ঠান কর মম হৃদয়-মন্দিরে ;
ভক্তিজলে প্রক্ষালিয়ে হৃদয়ের মল,
পূজা করি মা তোমার চরণকমল ॥ ৪ ॥

হৃদয় তোমার দেবি ! উৎস করুণার,
করুণার ধারাপূর্ণ তব স্তন্যাধার,
শৈশবে আমার ছিল জীবনসম্বল ;
বন্দি আমি মা তোমার চরণকমল ॥ ৫ ॥

তুমি মা অমরাবতী, তুমি মম গুরু,
ধর্ম্ম তুমি, তুমি ভবে মম শান্তিতরু,

সংসার-মরুর বারি, সর্ব্বস্ব আমার,
পূজা করি পাদপদ্ম জননি ! তোমার ॥ ৬ ॥

স্বর্গীয় কোমল কান্ত গুণে অলঙ্কৃত
অন্তর তোমার দেবি, কর সংক্রমিত
অন্তরে আমার সেই পুণ্যগুণচয়,
অকৃতী সন্তানে তুমি হইয়া সদয়,
দুর্ব্বলহৃদয়ে দেবি ! দাও সিংহ-বল,
বন্দি আমি মা তোমার চরণকমল ॥ ৭ ॥

নিয়ত নিঃস্বার্থভাবে, কষ্ট না ভাবিয়া,
কত কষ্ট সহিয়াছ আমার লাগিয়া,
স্মরিয়া সে সব চিত্ত হইল বিকল,
বন্দি আমি মা তোমার চরণকমল ॥ ৮ ॥

—

গ্রীষ্ম।

মধুর মধুর বড় নব জলধর,
নব তৃণ সুকোমল কিবা মনোহর,
ফুটন্ত যৌবন, ফুল, নব কিসলয়,
লাবণ্যের লীলাভূমি মধুরতাময় ;
নবতাই হবে তবে চারুতা-নিদান,
যার তরে নর-নারী তৃষিত-পরাণ ;
তাই বুঝি গ্রীষ্ম ঋতু এবে ধরা'পর
আসিল লইয়া সঙ্গে নূতন বৎসর ॥ ১ ॥

দিবাকর খরতর তেজোময় হইল,
পদ্মালয়- জলাশয়- জল-মান নাশিল।
ভয়াকুল মেঘকুল কোথায় যে লুকাল,
নব বর্ষে লয়ে হর্ষে গ্রীষ্ম এ যে আসিল ॥ ২ ॥

ক্ষুদ্রাশয় জলাশয় অতিশয় বিপদে,
বুঝি পড়ে জ্বলে মরে রবি-কর-সম্পদে,
সুগভীর অতি ধীর জলধির অন্তরে
নাহি পাপ নাহি তাপ কভু কারে না ডরে,
হীনসার নীচতার পরিণাম ভাবিয়া,
এল ভবে গ্রীষ্ম এবে নব বর্ষে লইয়া ॥ ৩ ॥

দিন দিন রসহীন ঘরষণে মাতিয়া
তরুদল দাবানল দিল বনে জ্বালিয়া,
নিজে তারা দিশেহারা মজিল যে সমূলে,
ভীতচিতে চারিভিতে পড়ি এবে অকূলে
পশু সব হাহারব করে বন পূরিয়া ;
এল ভবে গ্রীষ্ম এবে নব বর্ষে লইয়া ॥ ৪ ॥

রবি রাজা মহাতেজা দিবসের মধ্যমে,
পরিণত বন যত করে পুণ্য আশ্রমে ;
এ সময় পশুচয় অতিশয় তাপিয়া
চিরাগত স্বভাবত হিংসা ভয় ছাড়িয়া
অতি কাছে অরি আছে দেখেও না চাহিয়া ;
এল ভবে গ্রীষ্ম এবে নব বর্ষে লইয়া ॥ ৫ ॥

মরুস্থল, যেন খল, দৃপ্ত, তেজোবিভবে
(যার তাপে ভয়ে কাঁপে পশু পক্ষী মানবে)
ভয়ঙ্কর উগ্রতর কালমূর্ত্তি ধরিয়া
অবিরল হলাহল দিগ্বলয় দূষিয়া
উগারিছে, নহে মিছে, বুঝি সৃষ্টি নাশিতে ;
নব বর্ষে লয়ে হর্ষে গ্রীষ্ম এল মহীতে ॥ ৬ ॥

আম পাকে, জাম পাকে, পাকে আর কাঁঠাল,
পাকে বেল, নারিকেল আহা কিবা রসাল,
এইবার, সবাকার জিহ্বে জল আসিল,
দিয়া ফল সে সকল সকলেরে তোষিল
তরুগণ, হৃষ্টমন চরিতার্থ হইয়া ;
এল ভবে গ্রীষ্ম এবে নব বর্ষে লইয়া ॥ ৭ ॥

পুষ্পবতী বসুমতী মধুরূপী যৌবনে
ছিল রত অবিরত জনমনোরঞ্জনে,
অবিকল তারি ফল তাই এবে লভিল ;
নব বর্ষে লয়ে হর্ষে গ্রীষ্ম এ যে আসিল ॥ ৮ ॥

আহা কিবা দেখ দিবা- অবসান-সময়ে
শান্ত-বেশে শোভে শেষে ফুল্ল-ফুলনিচয়ে,
বিমোহিত কার্ চিত না হয় তা হেরিয়া ;
এল সে'জে গ্রীষ্ম এ যে নব বর্ষে লইয়া ॥ ৯ ॥

পাখী সবে কলরবে বরষিছে অমিয়া,
উপবন বরিষণ করে মধু, হাসিয়া
কি সুন্দর সুধাকর সুধা দেয় ঢালিয়া ;
এল ভবে গ্রীষ্ম এবে নব বর্ষে লইয়া ॥ ১০ ॥

অমিয়-সমান
বিভুগুণগান
গাও সবে সমস্বরে হৃদে তাঁরে রাখিয়া,
বিধি বিষ্ণু শিব
নাশিবে অশিব
ভজ তিনে, মনোহর মনোভবে জিনিয়া ॥ ১১ ॥

বর্ষা।

মেঘেতে ঢাকা আকাশ থেকে
ঝরিছে জল, ডাকিছে ভেকে,
বহিছে ঝড়, পড়িছে গাছ,
নূতন জলে খেলিছে মাছ,
খেলে বিজুলী, শিশুরা ভীতু,
এল যে এবে বরষা ঋতু ॥ ১ ॥

চন্দ্র ও ভানুর হায়! মুখ নাহি দেখা যায়
তাই বুঝি মুখ ভার করি,
দুখে দিগঙ্গনাগণ করে অশ্রু বরিষণ
ধারাকারে ধরাপৃষ্ঠোপরি।

শিলা পড়ে অবিরত, হইতেছে আর শত
ঘন ঘন অশনি-পতন,
ভীষণ-মূরতি ধরি, হেন অনুমান করি,
দেখা দিল বরষা এখন ॥ ২ ॥

মেঘমালা শিরে ধরি ধন্য হেন মনে করি,
লভি নব-বারি-বরিষণ
মহা-মহীধর যত জীবহিতে শত শত
নদ-নদী করিছে সৃজন ॥ ৩ ॥

নব নীল মেঘময় গগনে চাতকচয়
ফুল্লমনে করে বিচরণ;
নয়নে পলক নাই পুলকে নেহারে তাই
দিনে দিনে কৃষিজীবী জন;
আসিল যে বরষা এখন ॥ ৪ ॥

"এল অই বরষা এখন
তৃষাকুলে অনুকূল" গায় রে চাতককুল
সুধা-ধারা করি বরিষণ.
জলধারা পান করি সুমধুর সুর ধরি
কলকণ্ঠে গায় অনুক্ষণ—
"এল অই বরষা এখন" ॥ ৫ ॥

ত্রিদিবের মনোলোভা বুঝি নিরখিতে শোভা
মালাকারে বলাকার গণ
যায় জলদের পাশে, শোভে কিবা নীলাকাশে
শৈলকোলে হিমানী যেমন ;
আসিল যে বরষা এখন ॥ ৬ ॥

সৌদামিনী-ছটাময় নীল-রুচি মেঘচয়
আছে সদা ছাইয়া অম্বর,
শোভা হেরি সকলের মনে পড়ে, কনকের
রেখাঙ্কিত নিকষপাথর ;
কিংবা হেমলতা-জাল- মণ্ডিত তরু তমাল
স্নিগ্ধ সান্দ্র শ্যামল সুন্দর,
কিংবা কোলে কমলায় লয়ে যেন যদুরায়
করে কেলি শ্যাম নটবর,
আসিল যে বর্ষা ঋতুবর ॥ ৭ ॥

সুদূর গগনে শুনি যেন মৃদঙ্গের ধ্বনি
সুগভীর ঘন-গরজন
এখানে কদম্বমূলে সুন্দর পেখাম তু'লে
তালে তালে নাচে শিখিগণ—

পুলকিত নীপ-তরু হেরি তাই হাসে চারু,
ফুল্লফুলে অঙ্গ সুশোভন ;
আসিল যে বরষা এখন ॥ ৮ ॥

অই যে কি দেখা যায় নীল গগনের গায়,
ইন্দ্রধনু নহে এ কখন,
ময়ুরপুচ্ছের ছবি কল্পনার বলে কবি
বলে ইন্দ্র-ধনু সুলক্ষণ,
নানা রঙ্‌ ফলাইয়া চিত্র রেখেছে আঁকিয়া
বিশাল ফলকে সুরগণ ;
আসিল যে বরষা এখন ॥ ৯ ॥

শরৎ।

সুনীল অম্বর হ'তে ভীম-দরশন
বরষা-সম্ভব অম্বুধর রাশি যত
হ'ল অদর্শন ক্রমে, উল্লাসে অধীর
দিগঙ্গনাগণ এবে লভিয়া প্রসাদ ;
আহা কি মোহন সাজে সাজিল মেদিনী ;
এল যে সুন্দরী সতী শরৎ-কামিনী ॥ ১ ॥

বনে উপবনে কিবা সরসীর জলে
চারি ভিতে শ্বেত নীল লোহিত বরণ
ফুটিল কমলরাশি, ফুটিল অমনি
মানবের হৃদ্‌পদ্ম, দেখিতে দেখিতে
সে শোভা সুন্দর, ধীরে ধীরে সমাগত
পঙ্কজলক্ষণা সতী সুন্দরী শরৎ ॥ ২ ॥

মনোজ্ঞ তনিমা মধ্যে, সৈকত-নিতম্বে
বিশালতা, মন্থরতা সুন্দর চলনে
লভে ক্রমে কল্লোলিনী, বরাঙ্গনা যথা
উদ্দাম যৌবনে যবে করে পদার্পণ ;
নিরখিতে বুঝি তাই, মোহিয়া জগৎ
ধীরে ধীরে সমাগত সুন্দরী শরৎ ॥ ৩ ॥

বিরল বিফলোদয় নিরম্বু ধবল
প্রিয় পতি অম্বুবাহ, তাই প্রণয়িনী
তটিনী অমল-অল্প-নীরা মন্দগতি
নিরীহ অলস ; পতি সতী উভয়ের
অপূর্ব্ব সমতা হেরি, ধীরে সমাগত
স্বরগ হইতে দেবী সুন্দরী শরৎ ॥ ৪ ॥

বরষার জল-ধারা-স্নাত বসুন্ধরা
প্রথমে, সম্প্রতি তার পুণ্য বর তনু
হীনপঙ্ক, পঙ্কজের গন্ধে মনোহর
আমোদিত, অলঙ্কৃত বন্ধুজীব ফুলে ;
সখীর সে রূপ হেরি, ধীরে সমাগত
পঙ্কজলক্ষণা সতী সুন্দরী শরৎ ॥ ৫ ॥

স্থানে স্থানে বনে বনে রাশি রাশি কাশ-
কুসুম ফুটিয়া হেলে দোলে, মৃদু মৃদু
বায়ুর হিল্লোলে ; হেন মনে লয়, এবে
বসুমতী, শ্বেত চারু চামর ব্যজনে
নিয়ত নিরত, হেরি সখী সমাগত
স্বরগ হইতে সতী সুন্দরী শরৎ ॥ ৬ ॥

কি ছার সে বস্তু, তার কে করে আদর,
নাহি ব্যবহার যার ; সেই সে সুন্দর,
যাহে হয় বাস্তবিক উপকার লোকে ;
এত ভাবি পরিণত মনোহর শালি-
ধান্যে করি, করি পূর্ণ আশা কৃষকের,
ধীরে সমাগত সতী সুন্দরী শরৎ ॥ ৭ ॥

ব্যসন-সম্পাত গৌরবের সূত্রপাত
তেজস্বী জনার, দেখ প্রমাণস্বরূপ
উজলিয়া দশ দিক্, কান্ত সমুজ্জ্বল
কিরণ বিস্তারি শশী শোভিছে কেমন
মেঘমুক্ত এবে, নিরুপম ; বুঝি ধীরে
ধীরে সমাগত সতী সুন্দরী শরৎ ॥ ৮ ॥

সগরবে কলরবে মন্থর-গমনে
চলিছে সুন্দর দলে দলে হংস-হংসী
আনন্দে মগন, ক্ষিতি জানে না কেমন
কোমল চরণস্পর্শ, আহা মরি লাজে
নীরব সে রবে শিখী, শিখিছে যতনে
সে চারু চলনভঙ্গি নিতম্বিনী যত ;
দেখিতে দেখিতে আহা ! সে শোভা সুন্দর,
ধীরে সমাগত সতী সুন্দরী শরৎ ॥ ৯ ॥

তারকা-কুসুম-রাশি ফুটিয়া, নির্ম্মল
গগনে, সুদূরে উর্দ্ধে, নিম্নে সরোবরে
বিকচ কুমুদবৃন্দ, কি শোভা সুন্দর !
চন্দ্র-কর-পুলকিত-নিশা-সমাগমে ;
সমাগত ধীরে এ যে সুন্দরী শরৎ ॥ ১০ ॥

নিশা-অন্তে কলনাদে বিহঙ্গমগণ
মিলিয়া সহস্রকণ্ঠে গায় স্তুতিগীত
গ্রহরাজ সূর্য্যদেবে করি উদ্বোধন,
সরসী-রূপসী উন্মীলিয়া পদ্ম-আঁখি
নিরখিছে সে অরুণ-মূরতি মধুর ;
বৈকুণ্ঠে অমর বন্দী বন্দি সুললিত
স্তবে করে নিদ্রা-ভঙ্গ যেন শ্রীহরির,
কমলা কমলনেত্রে নেহারে বা যেন
কান্তের মূরতি কান্ত। বুঝি সমাগত
পঙ্কজলক্ষণা সতী সুন্দরী শরৎ ॥ ১১ ॥

কি পবিত্র নিরমল আনন্দ-প্রবাহে,
কি উদার প্রেমে মাখা সৌন্দর্য্যের স্রোতে
ভাসিছে ভুবন আহা ! দেখ দেবগণ,
দেখ অই ত্রিদিবের শ্রী অঙ্গে মাখিয়া
সমাগত ভবে দেবী সুন্দরী শরৎ ;
নমি তোমা বিশ্বপতি পিতা দয়াময়,
সৃজিলে এ হেন দেবী সুন্দরী শরৎ ॥ ১২ ॥

শীত।

আসিল যে শীতকাল কালের দোসর,

তরু-লতা-আভরণ

ফুল পাতা অগণন

দিন দিন ঝুর ঝুর ঝরে নিরন্তর ;

সুষমা-কুসুম হায় !

তেমতি ঝরিয়া যায়,

যায় যবে মানবের যৌবন সুন্দর,

গ্রাসিলে বার্দ্ধক্য আসি কালের দোসর ॥ ১ ॥

আসিল যে শীতকাল কালের দোসর,

খুলি পত্র-ফুল-সাজ

দীন-বেশে তরু আজ

ঊর্দ্ধপানে চেয়ে আছে নিচল নিথর,

বিষয়-বাসনা-হীন

তপঃক্লেশে তনু ক্ষীণ

ভগবানে করে ধ্যান যেন যোগিবর ;

আসিল যে শীতকাল কালের দোসর ॥ ২ ॥

আসিল যে শীতকাল কালের কিঙ্কর,

প্রকৃতির লীলাস্থল

অভ্রভেদী হিমাচল

হিমানীমণ্ডিত অঙ্গ তুঙ্গ, তুঙ্গতর

ধবল ধবলাকার
তুষারের পারাবার
নাহি পার কূল তার অনন্ত প্রসর,
আমি কি বর্ণিব তার, আমি ক্ষুদ্র নর ॥ ৩ ॥
আসিল যে শীত, সঙ্গে সমীর শীতল,
দয়িতা উত্তরা আশা,
সূর্য্য তারে ভালবাসা
নিবেদিতে, দিতে কোল হইল চঞ্চল,
অচিরে মিলিবে পতি
উল্লাসে অধীরা সতী,
তাই বুঝি ঘন ঘন উচ্ছ্বসে প্রবল,
তাই এ তুষাররাশি হেরি যে কেবল ॥ ৪ ॥
আসিল যে শীত, সহ সমীর শীতল,
পাদ-সেবা চন্দ্রমার
করে নাক কেহ আর,
পতির দুর্গতি হেরি যামিনী বিকল,
তাই তুহিনের ছলে
অবিরল অশ্রুজলে
পতিপ্রাণা সতী করে সিক্ত ধরাতল ;
আসিল যে শীত, সহ সমীর শীতল ॥ ৫ ॥

আসিল যে শীতকাল কালের দোসর,
মলিন বিবর্ণ ইন্দু
ঢালে নিশা অশ্রুবিন্দু
মলিন সে দুঃখভারে উষা, দিবাকর,
ধরি সে মধুর তান
পাখীরা করে না গান
সমদুখে দুখী তাই সরে না'ক স্বর,
আসিল যে শীতকাল কালের দোসর ॥ ৬ ॥
আসিল যে শীতকাল কাল দণ্ডধর,
মোরা অতি ক্রূরমতি
হায় রে ! কি হবে গতি,
গতি এবে রসাতল—আঁধার সাগর—
ভাবিয়া আকুল-মন
একে একে ফণিগণ
ধীরে ধীরে নতশিরে প্রবেশে বিবর ;
আসিল যে শীতকাল কাল দণ্ডধর ॥ ৭ ॥
আসিল যে শীত, সহ সমীর শীতল,
সেই রবি, সে অনল,
যারা ঢালিত গরল
নিদাঘে, এখন তারা আরামের স্থল ;

সেই বারি সমীরণ
নাহি পায় কারো মন
এখন, নিদাঘে যারা সুখের সম্বল ;
ভালবাসা, অনাদর কাজেতে কেবল ॥ ৮ ॥

আসিল দারুণ শীত এবে রে ধরায়,
দিন দিন আয়ুক্ষয়
বিষাদ-কুয়াসাময়
অপরাহ্ন দুঃসময় ধেয়ে এল হায় !
এবে দিবা স্থবিরের
সম দশা উভয়ের,
উভয়ে আঁধার-কোণে মিলিবে ত্বরায়,
আসিল দারুণ শীত এবে যে ধরায় ॥ ৯ ॥

বসন্ত।

নবদলে ফুল্লফুলে হইয়া ভূষিত
শোভে তরু, তরু-কোলে লতিকা ললিত,
শ্যামল সুন্দর নব শ্রী অঙ্গে মাখিয়া
হাসিছে নীরবে পুন জীবন লভিয়া ;

কৃতান্তের সহোদর শীত হল গত,
উদার বসন্তে হেরি এবে সমাগত ॥ ১ ॥

কুসুম-সৌরভ সদা করি বিকীরণ
বহে মৃদু মন্দ অই মলয়-পবন,
পরশে পরশে সুখ বিতরে সবায় ;
সুখের বসন্ত বুঝি আসিল ধরায় ॥ ২ ॥

কুসুমিত কুঞ্জবনে লতিকা ললিত
বায়ু সঙ্গে নাচে রঙ্গে হয়ে পুলকিত,
অনুরাগভরে করে ভ্রমর গুঞ্জন,
অহো কি মধুর ! যেন সুধা-বরিষণ,
গুন্ গুন্ রবে বুঝি গায় বারেবার ;
আসিল আসিল অই বসন্ত-বাহার ॥ ৩ ॥

কলকণ্ঠ মাতোয়ারা বসন্তে হেরিয়া
পঞ্চমে কুহুকু গায় দিগন্ত পূরিয়া,
মাতাইয়া ত্রিভুবন গায় অনিবার ;
আসিল বসন্ত হের আহা ! কি বাহার ॥ ৪ ॥

দিবা-নিশি মনোহর বিহগের দল
কলনাদে কতই যে গায় অবিরল,

সে রবে না হয় কেবা হরষে বিভল ;
আসিল বসন্ত, এবে আনন্দ কেবল ॥ ৫ ॥

দিনে দিনে নব নব কত সাজ ধরি
শোভে চারু চারুতর ধরণী-সুন্দরী,
যৌবন ফুটিয়া অঙ্গে অঙ্গেতে মিশায় ;
সুখের বসন্ত বুঝি আসিল ধরায় ॥ ৬ ॥

বাণী-কুঞ্জবনে সুখে কর বিচরণ,
কর কেলি নিশি-দিন তুমি হে যুবন্ !
মাতিয়া যৌবনমদে কর মধুপান,
আসিল বসন্ত তব সুখের নিদান ॥ ৭ ॥

এই ত সময়, এবে করি উপার্জ্জন
অবিরত ধনরাশি কর বিতরণ,
কর প্রদর্শন শত শত অবদান,
পরের দাসত্ব করি হারাও না মান,
সমুজ্জ্বল কীর্ত্তি-রথে করি আরোহণ
সংসার-কাননে সুখে কর বিচরণ ;
অই দেখ দেখ চেয়ে আহা কি বাহার !
আসিল সুখের তরে বসন্ত তোমার ॥ ৮ ॥

সাধ প্রাণপণে সদা জগতের হিত
প্রেমের মোহনমন্ত্রে হইয়া দীক্ষিত,
করি সদা পুরহিত কর রে নির্ম্মাণ
দেবতার লীলাভূমি স্বর্গের সোপান,
যাইতে নন্দনবনে কর রে যতন,
ক'র না বিলম্ব আর সাজ রে এখন ;
অই দেখ দেখ চেয়ে আহা কি বাহার !
আসিল সুখের তরে বসন্ত তোমার ॥ ৯ ॥

যুবা।

ভুবন-বিজয়ী কাম বীরের প্রধান,
কটাক্ষেতে যিনি তার বধিলেন প্রাণ ;
দেবগণ করে ধ্যান যাঁহার চরণ,
কামনারহিত যিনি যোগেতে মগন ;
বিশ্বের জনক যে বা জনমবিহীন,
প্রলয়ে ব্রহ্মাণ্ড হয় যাঁহাতে বিলীন ;
অশেষ-বিভূতিযুত সেই ভগবান্,
করুন করুণাসিন্ধু মঙ্গলবিধান ॥ ১ ॥

করুণাপ্রবণমনা জ্ঞানেতে প্রবীণ,
প্রকৃতির সঙ্গে যার গভীর প্রণয়,
হেন নরবর এক, বয়সে নবীন,
হেরিতে স্বভাব-শোভা আকুল-হৃদয়,
একদা নিদাঘকালে দিনান্ত-সময়,
নীরনিধিতীরে ধীরে উপনীত হয় ॥ ২ ॥

দয়ার সাগর এই সমুদ্র মহান্,
সুশীতল-জল-লব-পৃক্ত-সমীরণে
করিছে বীজন, আহা! যুড়াল পরাণ,
আলিঙ্গয়ে উর্ম্মিবাহু তুলি সযতনে,
কলস্বরে সমাদরে করে সম্ভাষণ,—
এত ভাবি হ'ল যুবা হরষিত-মন ॥ ৩ ॥

পয়োধির পরিচর্য্যা প্রিয় ব্যবহার
প্রকৃতি-প্রেমিক প্রতি নহে অসম্ভব,
নহে অসম্ভব, যুবা প্রকৃতি-উদার,
করিবে মহান্ ভাব হৃদে অনুভব;
পরহিত-ব্রতে রত মহাত্মা যে জন,
উদার চরিত্র তাঁর বুঝে জ্ঞানিগণ ॥ ৪ ॥

ক'রেছিল এত দিন শ্রবণে শ্রবণ
অপার মহিমা যার কীর্ত্তি মহীয়সী,
স্বচক্ষে সমুদ্রে আজ করি নিরীক্ষণ
উথলিল যুবকের হৃদে ভাবরাশি ;
ক্ষুদ্র দেহ কেমনে তা করিবে ধারণ,
কণ্ঠ-নালী-পথে তাই হ'ল নির্গমন ॥ ৫ ॥

মণি-মাণিক্যাদি নানা রত্নের আকর
প্রভূত-ক্ষমতাশালী প্রবীণ প্রাচীন
সমুদ্র, দরিদ্র আমি অতি ক্ষুদ্র নর—
অজ্ঞান বালক আমি সামর্থ্যবিহীন,
তথাপি আমারে নাহি করে তুচ্ছ জ্ঞান,
ইহাতেই মহতের মহত্ত্ব-প্রমাণ ॥ ৬ ॥

প্রাণের প্রতিমা সতী সীতা পূর্ণশশী,
দশানন-রাহু তাঁরে গ্রাসিল যখন,
ঘেরিল রাঘবে ঘোর দুখ-অমানিশি ;
নাশিবারে আধি তাঁর বারিধি তখন
ধরিল পাষাণ বুকে হরষিত-মনে,
পরহিতে নিজ প্রাণ তৃণ হেন গণে ॥ ৭ ॥

অনল প্রবল রিপু, তথাপি যতনে
সতত জলধি কোলে করিছে ধারণ,
দহন করয়ে দেহ, তথাপি দহনে
সলিল-ইন্ধন-দানে করিছে পোষণ ;
ঘটে নাই প্রকৃতির বিকৃতি ইহার,
শত্রু-মিত্র-ভেদজ্ঞান প্রসব যাহার ॥ ৮ ॥

মন্থন-যাতনা দেয় দেবাসুরগণ,
রত্নপতি রত্নরাজি করে প্রতিদান ;
জলধি-দুহিতা ধরা সহি নির্যাতন
কৃষকের, করে রত্ন অকাতরে দান ;
ধন্য হে সাগর তুমি, তুমি পুণ্যবান্,
ধরাধামে কে বা আছে তোমার সমান ? ॥৯॥

অয়স্কান্ত মণি করে লৌহ আকর্ষণ
থাকে যদি সন্নিকটে, কিন্তু অম্বুরাশি !
বড় গুণ ধর, গুণে নগবালাগণ
মুগ্ধ হয়ে গৃহ ছাড়ি ভজে দিবা-নিশি
গুণের মোহন শক্তি করি উদ্ঘোষণ,
উভয়ে তুলনা বল হয় কি কখন ? ॥ ১০ ॥

হ'ত যদি এ সংসার জীবে দয়াবান্,
সর্ব্বভূতে সমদর্শী ইহার মতন,
না থাকিত যদি ভবে গর্ব্ব অভিমান,
প্রেম-মন্ত্রে দীক্ষা যদি পে'ত সর্ব্বজন ;
হেরিতাম ভবে তবে নন্দনকানন,
করিতাম স্বর্গভোগ সুখে আজীবন ॥ ১১ ॥

দুঃখভরে এইভাবে বলিতে বলিতে
অকস্মাৎ যুবকের হইল পতিত
পশ্চিমগগনে দৃষ্টি, অমনি ত্বরিতে
সুযোগ পাইয়া রবি, প্রায় অস্তমিত,
আকর্ষিল হ'য়ে যেন ঈর্ষাপরবশ
জলধির স্তবে মগ্ন যুবার মানস ॥ ১২ ॥

অস্তাচলে যায় রবি হেরিয়া নয়নে
হইল মলিন তার কমল-বদন,
বিপন্ন ভাবিয়া তায় বড় দুঃখ মনে,
কাতর করুণকণ্ঠে সম্ভাষে তখন ;
পরদুখে বিগলিত কোমল-হৃদয়,
পাষাণে গঠিত চিত উদাসীন রয় ॥ ১৩ ॥

কোথা যাও ভানুদেব! ক্ষণেক দাঁড়াও,
কোথা গেল বল তব সে বীর্য্য-বিভব,
মনোদুখে অধোমুখে বল কোথা যাও,
কেন হেন দীনভাব দিননাথ! তব?
আঁধার-সাগরে কেন ডুবায়ে ধরণী,
অতল জলধিজলে ডুবিবে আপনি? ॥ ১৪ ॥

স্পর্শে স্পর্শে সুখকর নিশাকর-কর,
ভীম-করে অকাতরে করিয়া তাড়ন
কাড়িয়া লইলে তার রাজ্য মনোহর,
কালানল-সম তুমি সহস্রকিরণ,
সেই শশী বুঝি তোমা করে নির্ব্বাসন
এবে, হায়! তব ভাগ্যে সমুদ্রে মরণ ॥ ১৫ ॥

অতিক্রমি হীন দশা লভিতে উন্নতি
পারে, যদি করে নর একান্ত যতন,
লভিলে উন্নতি কালে হবে অবনতি,
বিনা বাক্যে কার্য্যে কি হে করিতে জ্ঞাপন,
প্রথমে উদয়গিরি, উর্দ্ধে পরক্ষণ,
অবশেষে অস্তাচলে কর আরোহণ? ॥ ১৬ ॥

সুরূপ সম্পদ সুখ সাধের যৌবন
ক্ষণপ্রভা-প্রায় সব ক্ষণে পায় লয়,
ইহাই কি শ্লোক-চিত্তে করিতে অঙ্কন
বাসনা হইল তব মানসে উদয় ?
তাই পূর্ব্বাচল হ'তে ঊর্দ্ধে আরোহণ,
অবশেষে অস্তগিরি করিছ গমন ? ॥ ১৭ ॥

একি দেখি অকস্মাৎ মেঘ-দৈত্য হায় !
হয়েছে ধাবিত, লক্ষ্য বিভাবরী-অরি,
দেখিতে দেখিতে দুষ্ট প্রদোষ-সহায়
আক্রমিল দিবাকরে সর্ব্বাঙ্গ আবরি ;
বুঝিলাম এবে হায় ! কথা মিথ্যা নয়,
আসে না বিপদ্ ভবে একাকী নিশ্চয় ॥ ১৮ ॥

ধিক্ তোরে অরে মেঘ ! দুরাচার খল !
কি ফল হইল বল করিয়া পীড়ন
দুর্গত তপনে ? অহো ! বুঝেছি, কেবল
পরের অনিষ্টে তোর চেষ্টা, আয়োজন ;
বিরহীর প্রাণে ব্যথা দিস্ অনিবার,
বজ্রপাতে কত প্রাণী করিস্ সংহার ॥ ১৯ ॥

ধিক্ তোরে অরে ধূর্ত্ত দুরন্ত পামর!
বারিধির বারি নিত্য তুলি নিজকরে
দয়া করি জন্ম তোরে দিল দিবাকর,
কোন্ প্রাণে পীড়া দিস্ তারে অকাতরে?
জানি না কি দশা তোর হইবে তখন,
মহারোষে দেখা দিবে যবে প্রভঞ্জন ॥ ২০ ॥

হ'ল অই রাকাশশী আকাশে উদিত,
হাসিময় মনোহর সুধার আকর,
খরতর-ভানু-তাপে মেদিনী তাপিত,
তাই বুঝি সুধারাশি ঢালে সুধাকর;
নাশিতে রবির কৃতি চন্দ্রমা-উদয়,
হেন প্রতিযোগিভাব শ্রেষ্ঠ অতিশয় ॥ ২১ ॥

শীত-অন্তে সঞ্জীবন বসন্ত উদয়,
তপনের তাপ-অন্তে সুধাংশুকিরণ,
বেলা-বন হয় যত নদীগর্ভে লয়
উর্ব্বর পুলিনরূপে দেয় দরশন;
আপাততঃ যাহে মোরা করি দুঃখজ্ঞান,
পরিণামে সুখকর বিধির বিধান ॥ ২২ ॥

কলধৌত-চক্র-সম চন্দ্রমামণ্ডল,
কাল রেখাবলী তাহে কতই শোভন,
চন্দ্রাননে নেত্রপক্ষ্ম কাল ভ্রূযুগল
করে না কি কামিনীর শোভা-সম্পাদন ?
গুঞ্জরবে ভৃঙ্গরাজ বিরাজে যখন,
হয় না কি পদ্মিনীর চারুতা-বর্দ্ধন ? ॥ ২৩ ॥

ক্ষতি নাই থা'ক চিহ্ন অঙ্গে অনিবার,
কে বলে কলঙ্ক, সে ত অঙ্গের ভূষণ,
কর' না হে অম্বুনিধি ! কলঙ্ক আমার
তব জলে চিহ্নগুলি করিয়া ক্ষালন,—
করিল প্রার্থনা হেন শশী কলাবিৎ,
পূরা'ল জলধি তার বাঞ্ছা লোকাতীত ॥ ২৪ ॥

এ হেন প্রার্থনা যদি না করিবে শশী,
জলধির জলে মগ্ন থাকি নিরবধি
কেন না ঘুচিল তার এ কলঙ্করাশি ?
ক্ষালিতে সমর্থ কিংবা নহে কি উদধি ?
চন্দ্রমা সুষমাপ্রিয় জানে জগজন,
শোভা-হানি হ'লে কভু হাসিত এমন ? ॥ ২৫ ॥

কোথা হ'তে এল অই নীলিমা শশীর ?
সত্যই কি শশ কিংবা চকিত হরিণ ?
অলীক এ সব, শুধু কল্পনা কবির,
শশ মৃগ সব মিথ্যা প্রবাদ প্রাচীন ;
স্পষ্ট আমি হেরিতেছি অঙ্গেতে ইহার
মসীময় করলিপি বিজ্ঞ বিধাতার ॥ ২৬ ॥

শুন রে মানব !
ধন জন যৌবনের ক'র না গরব,
অনিত্য এ সব ;
ক'র না ক'র না
জ্ঞানের গরিমা, ছাড় বিষয়-বাসনা
অসার ভাবনা ;
তব হিত তরে,
লিখিনু বিধাতা আমি অক্ষর অক্ষরে,
হের হিমকরে ॥ ২৭ ॥

হ'তেছে উদয়,
ক্রমে পূর্ণ উপচয়, ক্রমে হয় ক্ষয়,
ক্রমশ বিলয় ;

যথা চন্দ্রমার,
বার বার, হেন দশা নিয়তি তোমার,
জেন এই সার ;
চঞ্চল যৌবন,
চঞ্চল এ রূপ তব, চঞ্চল জীবন,
শশীর মতন ;
শশীর মতন
জননে মরণ, পুন মরণে জনন,
বিধি সাধারণ ॥ ২৮ ॥

কর পরাজয়
সুদর্শন-অসিধারে দেহে রিপুচয়,
দুষ্ট অতিশয় ;
কর অবিরল
মলিন হৃদয় তব বিশুদ্ধ বিমল
উদার সরল ;
শান্তিপ্রস্রবণ
সত্য সনাতন যোগ ধর্ম্ম আচরণ
কর অনুক্ষণ ;

যাবে দুখভার,
হবে আনন্দ অপার, আসিবে না আর
এ ভবে আবার ॥ ২৯ ॥

সযতনে লিখিলেন বিধি দয়াময়,
ভ্রমেও না দেখে নর থাকিতে নয়ন,
না বুঝিয়া কিন্তু হায়! প্রকৃত বিষয়,
অকলঙ্ক চাঁদে করে কলঙ্ক রটন;
লৌকিক অযশ যশে ধিক্ শতবার,
পুংশ্চলী রসনা শুধু প্রসূতি যাহার ॥ ৩০ ॥

আছে কি এ বিশ্বমাঝে শশাঙ্ক যেমন
রূপে গুণে কমনীয় মনোমুগ্ধকর?
আছে কি পদার্থ হেন পরার্থ-জীবন
পরার্থসাধনে যার কৃতার্থ অন্তর?
সুধা ঢালি অঙ্গে অঙ্গে চণ্ডী প্রকৃতির
হাসি হাসি শান্তিসুখ সাধিছে প্রাণীর ॥ ৩১ ॥

আহা কিবা মনোহরা মোহিনী প্রকৃতি
অনিন্দ্য সুন্দরী দেবী অঙ্গে কত শোভা,
বিশুদ্ধ বিমল বেশ প্রশান্ত-মুরতি,
অনন্ত গম্ভীর স্থির মুনিমনোলোভা;

হেরি এ মূরতি আজ ধন্য দুনয়ন,
নিরখিল যে না তার বিফল জীবন ॥ ৩২ ॥

উদার অম্বর ললাট সুন্দর,
ঘনাবলী চারু অলকদাম,
শ্যামতরুপত্র বসন বিচিত্র,
রসনা বিলোল জলধি নাম ;
আহা মরি মরি ! কি রূপ-মাধুরী
পান করি করি উদাস মন,
শান্তির মূরতি দেবী ভগবতী
সামান্যা রমণী প্রকৃতি নন্ ॥ ৩৩ ॥

অরুণ-বরণ ভানুর কিরণ
নীরদে বিলম্বি কি শোভা তার,
না না, এ যে ধীর প্রকৃতি দেবীর
সীমন্তে সিন্দুর ভূষণ-সার।
অন্য আভরণ করি না দর্শন,
অপূর্ব্ব দর্শন তথাপি বড়,
যে হেরিবে রূপ হেন অপরূপ
হইবে মোহিত, হইবে জড় ;

ভক্তি-উপহারে এ হেন দেবীরে
বাসনা মানসে সতত সেবি,
শান্তির মূরতি সতী ভগবতী
সামান্যা নহে রে প্রকৃতিদেবী ॥ ৩৪ ॥

জনমনোলোভা কতই যে শোভা
চন্দ্রাননে অই পীযূষে ভরা,
বড় সাধ, সুধা পান করি সদা
এ চাঁদমুখের ত্রিতাপহরা ;
চাঁদ অভিরাম আননের নাম
ক্ষুদ্র এ দেবীর আনন তবে
দূরে অবস্থান বলিবে বিজ্ঞান,
ক্ষুদ্র দৃশ্যমান তাতেই ভবে ;
শ্রুতিপ্রীতিকর কিবা মনোহর
কলধ্বনি অই কি শুনি কাণে,
বিহঙ্গকূজন এ নহে কখন,
গাইছে প্রকৃতি মধুর-তানে ;
অতি ভক্তিভরে সুমধুর-স্বরে
গাইছে বিভুর মধুর গান,
বহে অবিরল সুগন্ধ শীতল
আনন-অনিল ত্রিলোক-প্রাণ ;

রমণী-রতন ভবে অতুলন
বিলাসবিভ্রম জানে না কভু,
শান্তির মূরতি সতী ভগবতী
নহে রে সামান্যা প্রকৃতি স্বভূ ॥ ৩৫ ॥
সুবর্ণভূষণ করে না ধারণ
আদরের ধন ললনাকুলে,
সুচারু কুণ্ডল বরণ উজল
শ্রবণযুগলে নাহিক দুলে ;
কণ্ঠভূষা হার দেখি না ইহার,
বহে না নিতম্ব কাঞ্চীভূষণ,
অমূল্য রতনে খচিত যতনে
নাহি পরিধানে সূক্ষ্ম বসন ;
শোভা বিমোহন তথাপি কেমন,
তথাপি কেমন মোহন সাজ,
শান্তির মূরতি সুন্দরী প্রকৃতি
সামান্যা নহে রে বুঝিনু আজ ॥ ৩৬-৩৭ ॥
নব অনুরাগে কুঙ্কুমের রাগে
করে না রঞ্জিত চারু চরণ,
গন্ধবিলেপন দেহপ্রসাধন
জানে না চন্দনচর্চ্চা কেমন ;

তথাপি কেমন শিরীষ-প্রসূন-
স্থকুমার-কায় সৌরভময়,
শান্তির মূরতি দেবী ভগবতী
সামান্যা রমণী প্রকৃতি নয় ॥ ৩৮-৩৯ ॥
প্রকৃতি জরতী কেহ বা যুবতী
কিশোরী কেহ বা বালিকা বলে,
যথার্থ বিচার করিতে ইহার
নাহি হেন জন জগতী-তলে,
নাহি হেন জন করে নিরূপণ
প্রকৃতিদেবীর বয়স কত,
রূপে বিমোহিত তথাপি সতত
স্থবির যুবক কিশোর যত ;
ভক্তি-উপহারে হেন দেবতারে
বাসনা মানসে সতত সেবি,
শান্তির মূরতি সতী ভগবতী
সামান্যা নহে রে প্রকৃতিদেবী ॥ ৪০ ॥
রূপে গরবিণী ভূষণশালিনী
যুবক-রমণী যুবতী যত,
ওহে যুবজন যুবতী-রমণ !
এ'স ত্বরা করি তোমরা শত ;

নাহি অলঙ্কার,　　　শ্রীঅঙ্গ ইহার
তথাপি কেমন শোভিছে দেখ,
সুবর্ণ-ভূষণ　　　শোভা-নিকেতন,
এ কথা অলীক মনেতে রে'খ ॥ ৪১ ॥

তোমরা যুবক !　　　প্রকৃতি-সেবক
হও, ইথে নাহি নিয়ম-বিধি,
চরণে শরণ　　　লও অনুক্ষণ,
মিলিবে রতন অমূল্যনিধি ;
প্রমদা প্রকৃতি　　　নানারূপে সতী
পূরাবে কামনা, কামনা বারি,
তোমরা যুবতি !　　　যদি অনুকৃতি
কর, তবে হবে আদর্শনারী ॥ ৪২ ॥

কাহার নন্দিনী ইনি কাহার বনিতা,
কোন্ কুল সমুজ্জ্বল জনমে ইহার,
কোথা বা আছয়ে পতি, কোথা মাতা পিতা,
জানিতে বাসনা যদি, শুন বলি সার—
জনক জননী নাই, কিন্তু বর্ত্তমান
আছে পতি অবিনাশ পুরুষ-প্রধান ॥ ৪৩ ॥

পরব্রহ্ম সনাতন নিরীহ অব্যয়,
প্রকৃতি অব্যক্তরূপা অনাদিনিধন,
সমীভূত-সত্ত্বরজস্তমোগুণময়,
পতিরূপে পরমেশে করিল বরণ ;
পতি সতী উভয়ের শুভ সংমিলন
জড় জীব জগতের সৃজনকারণ ॥ ৪৪ ॥

যথা সতী তথা পতি সদা বর্ত্তমান,
সঙ্গ ছাড়া কেহ কারো নহে ক্ষণকাল,
যেই পত্নী পতি সেই অভিন্ন পরাণ,
উভয়ে অভেদ, তবু প্রভেদ বিশাল ;
অদ্ভুত রহস্য আমি বুঝিতে অক্ষম
পাপেতে মলিনচিত্ত অজ্ঞ নরাধম ॥ ৪৫ ॥

অজ্ঞাত খনির মাঝে বিরাজে যেমন
স্তরে স্তরে ধাতু, কেহ দেখিতে না পায় ;
কিংবা জানে না বিরহ, রহে অনুক্ষণ
ব্যাপিয়া তাড়িত যথা জলদের গায় ;
অঙ্গে অঙ্গে মহাদেবী প্রকৃতি সতীর
বিহরে তেমতি মহাদেব অশরীর ॥ ৪৬ ॥

নম নম ভগবতি বিশ্বস্বরূপিণি!
আদ্যা শক্তি মহাদেবি! বিশ্বের নিদান,
জয় জয় ব্রহ্মময়ি আত্মবিনোদিনি!
বল বল কৃপা করি বিভুর সন্ধান,
দেখাও দেখাও দেবি! দেখাও তাঁহায়,
লভিয়াছ দেহে প্রাণ যাঁহার কৃপায়॥ ৪৭॥

তোমায়—তোমায় শত সহস্র প্রণাম
শব্দগুণশালী অয়ি অনন্ত গগন!
অনন্ত বিভুর গুণ গাও অবিরাম,
কৃপা করি কর্ণামৃত করহ সিঞ্চন,
গাও দেব! গাও শুনি, আকৃতি কেমন,
কেমন প্রকৃতি তাঁর, কে বা প্রিয়জন॥ ৪৮॥

নমস্তে পবনদেব জগতের প্রাণ!
যাও বিভুর সদন, করি এ মিনতি,
ত্রিলোকে অগম্য তব নাহি কোন স্থান,
স্পর্শগুণশালী তুমি ওহে সদাগতি;
পরেশের পুণ্যময় পরশ লভিয়া
হর মম রজোরাশি গাঢ় আলিঙ্গিয়া॥ ৪৯॥

নম নম বিভাবসু দেব, জ্যোতির্ম্ময়!
রূপে গুণান্বিত তুমি তিমিরনাশন,
প্রবেশি অন্তরে মম হর তমশ্চয়,
তব গুণে রূপবান্ নিখিল ভুবন ;
হর মম তম, আর এই ভিক্ষা চাই,
বিভুর স্বরূপ যেন দেখিবারে পাই ॥ ৫০ ॥

নমি আমি অম্বুদেব! নমি যোড়করে
ধবল শীতল তুমি রস-গুণময়,
বিমল দর্পণরূপে দেখাও সত্বরে
প্রতিবিম্ব প্রাণেশের, বিলম্ব না সয় ;
তা'ও যদি না দেখাবে, রাখিব না আর
ভবদাবানলে দগ্ধ এ দেহ আমার ॥ ৫১ ॥

নমি আমি ক্ষিতিদেবি! নমি গো তোমায়,
ফল-শস্যরূপে তুমি জীবন সবার,
স্বর্ণ তুমি, তুমি রত্ন, তুমি শৈলকায়,
অনন্ত তোমার রূপ, মহিমা অপার ;
কহ কোথা প্রাণেশের প্রিয় নিকেতন,
দেখিয়া মনের সাধে যুড়াব জীবন ॥ ৫২ ॥

প্রকৃতির পঞ্চ অঙ্গ মহা-প্রেমভরে
হৃদয়-কুসুমে যুবা করিছে অর্চ্চন,
অকস্মাৎ কণ্ঠরোধ! না জানি অন্তরে
ভাবান্তর কিবা, জলে প্লাবিল নয়ন,
প্লাবিল নয়ন-জলে বদনমণ্ডল
হৈমন্ত শিশিরে যথা প্রভাতকমল ॥ ৫৩ ॥

চিন্ময়ে তন্ময় যুবা, নিস্পন্দ নীরব,
গগন-নিহিত-নেত্র, চৈতন্যবিহীন,
প্রহরেক পরে, যেন লম্বকায়-শব,
হ'ল ভূতলে শয়ান মহাযোগাসীন ;
ধ্যানে মগ্ন যোগিবর মুদ্রিত-নয়নে,
মুদ্রিত ইন্দ্রিয় যত, প্রবেশিয়া মনে ॥ ৫৪ ॥

ঘটে না ইহার যেন ধ্যানেতে প্রমাদ—
করুন্ দেবাদিদেব এই আশীর্ব্বাদ,
ইন্দ্রের আদেশে যেন সুরাঙ্গনাগণ
পাতিয়া যৌবন-ফাঁদ না ভুলায় মন,
হয় যেন বিধি শিব সহ নারায়ণ
সহস্রকমলদলে আত্মার মিলন,

সিদ্ধ শুদ্ধ মুক্ত আত্মা আনন্দে মগন
চন্দ্রসূর্য্যলোকে যেন করে বিচরণ ॥ ৫৫ ॥